अथ द्वितीयोऽध्यायः

प्रथमः पादः

समर्थः पदविधिः ॥२।१।१॥

समर्थः १।१॥ पदविधिः १।१॥ स०—चतुर्विधोऽत्र विग्रहो द्रष्टव्यः—सङ्गतार्थः समर्थः; संसृष्टार्थः समर्थः; सम्प्रेक्षितार्थः समर्थः; संबद्धार्थः समर्थः, उत्तरपदलोपी बहुव्रीहिः । पदस्य विधिः, पदयोर्विधिः, पदानां विधिः, पदात् विधिः=पदविधिः, इति सर्वविभक्त्यन्तः तत्पुरुषसमासोऽत्र बोध्यः ॥ **अर्थः**—परिभाषासूत्रमिदम् । समर्थानां=सम्बद्धार्थानां पदानां विधिर्भवति ॥ **उदा०**—राज्ञः पुरुषः राजपुरुषः इत्यत्र समासो भवति, यतो ह्यत्र 'राज्ञः पुरुषः' इति उभे पदे परस्परं सम्बद्धार्थे=समर्थे स्तः । परं 'भार्या राज्ञः, पुरुषो देवदत्तस्य' इत्यत्र राज्ञः पुरुषः इत्यनयोः पदयोः सम्बद्धार्थता=परस्परमाकाङ्क्षा नास्ति, इत्यतः समासो न भवति । एवं कष्टं श्रितः=कष्टश्रितः इत्यत्र सामर्थ्यस्य विद्यमानत्वात् समासो भवति । एवं सर्वत्र योजनीयम् ॥

भाषार्थः—[पदविधिः] **पदों की विधि** [समर्थः] **समर्थ=परस्पर सम्बद्ध अर्थवाले पदों की होती है ॥ यह परिभाषासूत्र है, अतः सम्पूर्ण व्याकरणशास्त्र में इसकी प्रवृत्ति होती है ॥ जिस शब्द के साथ जिस शब्द का परस्पर सम्बन्ध होता है, वे परस्पर 'समर्थ' कहाते हैं । जैसे कि समासविधि में** राज्ञः पुरुषः **(राजा का पुरुष)=**राजपुरुषः, **यहां राजा का पुरुष है एवं पुरुष राजा का है, अतः राज्ञः और पुरुषः दोनों पद परस्पर सम्बद्ध=समर्थ हैं, सो समास हो गया है । पर 'भार्या राज्ञः, पुरुषो देवदत्तस्य' (राजा की भार्या, पुरुष देवदत्त का) यहाँ राजा का सम्बन्ध भार्या के साथ है, तथा पुरुष का सम्बन्ध देवदत्त के साथ है । यहाँ परस्पर राजा एवं पुरुष की सम्बद्धार्थता=समर्थता नहीं है । अतः** राज्ञः पुरुषः **का यहां समास नहीं हुआ । सूत्र में समर्थ ग्रहण करने का यही प्रयोजन है ॥ इसी प्रकार कष्टं श्रितः, यहां समर्थ होने से समास होकर 'कष्टश्रितः' बन जाता है । पर 'पश्य देवदत्त कष्टं, श्रितो विष्णुमित्रो गुरुकुलम्' (हे देवदत्त ! कष्ट को देख, विष्णुमित्र गुरुकुल में पहुँच गया), यहाँ पर कष्टं तथा श्रितः की परस्पर सम्बद्धार्थता नहीं है, सो समास नहीं हुआ । इसी प्रकार अन्यत्र भी समझना चाहिये ॥**

'राजपुरुषः' आदि की सिद्धियां परि० १।२।४३ में देखें ॥

सुबामन्त्रिते पराङ्गवत् स्वरे ॥२।१।२॥

सुप् १।१॥ आमन्त्रिते ७।१॥ पराङ्गवत् अ० ॥ स्वरे ७।१॥ स०—अङ्गेन तुल्यम् अङ्गवत्, परस्य अङ्गवत् पराङ्गवत्, षष्ठीतत्पुरुषः ॥ **अर्थः**—आमन्त्रिते पदे परतः सुबन्तं पराङ्गवद् भवति स्वरे कर्त्तव्ये ॥ उदा०—कुण्डेन अटन् । परशुना वृश्चन् । मद्राणां राजन् । कश्मीराणां राजन् ॥

भावार्थ:—[आमन्त्रिते] आमन्त्रितसंज्ञक पद के परे रहते, उसके पूर्व जो [सुप्] सुबन्त पद उसको [पराङ्गवत्] पर के अङ्ग के समान कार्य होता है, [स्वरे] स्वरविषय में ॥ यह अतिदेशसूत्र है ॥

यहाँ से 'सुप्' का अधिकार २।२।२९ तक जायेगा ॥

प्राक् कडारात् समासः ॥२।१।३॥

प्राक् अ० ॥ कडारात् ५।१॥ समासः १।१॥ **अर्थः**—'कडाराः कर्मधारये' (२।२।३८) इति सूत्रं वक्ष्यति, प्राग् एतस्मात् समाससंज्ञा भवतीत्यधिकारो वेदितव्यः ॥ अग्र उदाहरिष्यामः ॥

भाषार्थ:—[कडारात्] कडाराः कर्मधारये (२।२।३८) से [प्राक्] पहले-पहले [समासः] समास संज्ञा का अधिकार जायेगा, यह जानना चाहिये ॥

विशेषः—'समास' संक्षेप करने को कहते हैं । जिसमें अनेक पदों का एक पद, अनेक विभक्तियों की एक विभक्ति, तथा अनेक स्वरों का एक स्वर हो, उसे समास कहते हैं । यह चार प्रकार का होता है, जिसकी व्याख्या द्वितीय पाद के अन्त तक की जायगी ॥ इस विषय में विशेष जानकारी के लिये हमारी बनाई 'सरलतम विधि' तृ० सं०, पृ० ४०-४१, पाठ १७ देखें ॥

सह सुपा ॥२।१।४॥

सह अ० ॥ सुपा ३।१॥ अनु०—समासः, सुप् ॥ **अर्थः**—सुपा सह सुप् समस्यते, इत्यधिकारो वेदितव्यः ॥ अग्र उदाहरिष्यामः ॥

भाषार्थः—[सुपा] सुबन्त के [सह] साथ सुबन्त का समास होता है, यह अधिकार २।२।२२ तक जानना चाहिये ॥

[अव्ययीभाव-समास-प्रकरणम्]

अव्ययीभावः ॥२।१।५॥

अव्ययीभावः १।१॥ **अर्थः**—अयमप्यधिकारो वेदितव्यः । इतोऽग्रे यः समासो भवति तस्याव्ययीभावसंज्ञा भवतीति वेदितव्यम् ॥ अग्र उदाहरिष्यामः ॥

भाषार्थः—यह भी अधिकारसूत्र है, २।१।२१ तक जायगा। यहाँ से आगे जो समास कहेंगे, उसकी [अव्ययीभावः] अव्ययीभाव संज्ञा होती है, ऐसा जानना चाहिये॥

विशेषः—अव्ययीभाव समास में प्रायः पूर्वपद का अर्थ प्रधान होता है। यथा—उपकुम्भम् में 'उप' अव्यय है, जिसका अर्थ है समीप। सो इसमें समीप अर्थ की प्रधानता है, न कि कुम्भ की॥

अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धिव्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रतिशब्द-प्रादुर्भावपश्चाद्यथानुपूर्व्ययौगपद्यसादृश्यसम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु ॥२।१।६॥

अव्ययम् १।१॥ विभक्ति···वचनेषु ७।३॥ स०—विभक्तिश्च, समीपञ्च, समृद्धिश्च, व्यृद्धिश्च, अर्थाभावश्च, अत्ययश्च, असम्प्रति च, शब्दप्रादुर्भावश्च, पश्चाच्च, यथा च, आनुपूर्व्यञ्च, यौगपद्यञ्च, सादृश्यञ्च, सम्पत्तिश्च, साकल्यञ्च, अन्तश्चेति विभक्तिस···न्ताः, ते च ते वचनाश्च, तेषु, द्वन्द्वपूर्वः कर्मधारयः॥ अनु०—सह सुपा, सुप्, समासः, अव्ययीभावः॥ अर्थः—विभक्ति, समीप, समृद्धि (ऋद्धेराधिक्यम्), व्यृद्धि (ऋद्धेरभावः), अर्थाभाव (वस्तुनोऽभावः), अत्यय (भूतत्वमतिक्रमः), असम्प्रति, शब्दप्रादुर्भाव (प्रकाशता शब्दस्य) पश्चाद्, यथार्थ, आनुपूर्व्य, यौगपद्य, सादृश्य, सम्पत्ति, साकल्य, अन्तवचन इत्येतेष्वर्थेषु यदव्ययं वर्त्तते, तत् समर्थेन सुबन्तेन सह समस्यते, अव्ययीभावश्च समासो भवति॥ विभक्तिशब्देनेह कारकमुच्यते। विभज्यते प्रातिपदिकार्थोऽनयेति कृत्वा तच्चेहाधिकरणं विवक्षितं, न तु सर्वे कारकाः॥ उदा०—विभक्तिः—स्त्रीष्वधिकृत्य=अधिस्त्रि, अधिकुमारि॥ समीपम्—कुम्भस्य समीपम्=उपकुम्भम्, उपकूपम्॥ समृद्धिः—सुमगधम्, सुभारतम्॥ व्यृद्धिः—मगधानां व्यृद्धिः=दुर्मगधम्, दुर्गवदिकम्॥ अर्थाभावः—मक्षिकाणामभावः=निर्मक्षिकम्, निर्मशकम्॥ अत्ययः—अतीतानि हिमानि=निर्हिमं, निःशीतम्॥ असंप्रति—अतितैसृकम्॥ शब्दप्रादुर्भावः—पाणिनिशब्दस्य प्रकाशः=[1]इतिपाणिनि, तत्पाणिनि॥ पश्चात्—रथानां पश्चात्=अनुरथं पादातम्॥ यथा—यथाशब्दस्य चत्वारोऽर्थाः—योग्यता, वीप्सा, पदार्थानतिवृत्तिः, सादृश्यञ्चेति। तत्र क्रमेण उदाह्रियते—योग्यता—रूपस्य योग्यम्=अनुरूपम्॥ वीप्सा—अर्थम् अर्थं प्रति=प्रत्यर्थम् शब्दनिवेशः॥ पदार्थानतिवृत्तिः—शक्तिम् अनतिक्रम्य=यथाशक्ति॥ सादृश्यम्—यथाऽसादृश्ये (२।१।७) इति सादृश्यप्रतिषेधाद् उदाहरणं न प्रदीयते। आनुपूर्व्यम्—

---

१. समास के अपने पदों को लेकर जहां विग्रह न हो, उसे अस्वपद विग्रह कहते हैं, न स्वपद=अस्वपद। सो यहां अस्वपद विग्रह समास है॥

ज्येष्ठस्य आनुपूर्व्यम् = अनुज्येष्ठं प्रविशन्तु भवन्त: ॥ **यौगपद्यम्**—युगपत् चक्रं = सचक्रं धेहि ॥ **सादृश्यम्**—सदृश: सख्या = ससखि ॥ **सम्पत्ति:**—ब्रह्मण: सम्पत्ति: = सब्रह्म बाभ्रवाणाम्, सक्षत्रं शालङ्कायनानाम् ॥ **साकल्यम्**—तृणानां साकल्यं = सतृण मभ्यवहरति, सबुसम् ॥ **अन्तवचनम्**—अग्नेरन्त: = साग्नि, ससमासम् अष्टाध्यायीम-धीते ॥

भाषार्थ:—[विभक्ति···वचनेषु] **विभक्ति समीपादि अर्थों में वर्त्तमान जो** [अव्ययम्] **अव्यय, वह समर्थ सुबन्त के साथ समास को प्राप्त होता है, और समास अव्ययीभाव-संज्ञक होता है ॥**

विभक्ति शब्द से यहां कारक लिया गया है। उन कारकों में यहां अधिकरण कारक ही विवक्षित है, न कि सब कारक। ऋद्धि (वृद्धि) की अधिकता को समृद्धि कहते हैं, तथा ऋद्धि के अभाव को व्यृद्धि कहते हैं। वस्तु के अभाव को अर्थाभाव कहते हैं। जो भूतकालीन है उसके अतीत हो जाने को अत्यय कहते हैं, अथवा जो हो वह न रहे। तथा शब्द की प्रकाशता को शब्दप्रादुर्भाव कहते हैं। यहां 'वचन' शब्द का प्रत्येक के साथ सम्बन्ध लगा लेना ॥

उदा०—विभक्ति—**अधिस्त्रि** (स्त्रियों के विषय में), अधिकुमारि। समीप—**उपकुम्भम्** (घड़े के पास), **उपकूपम्** (कूएं के पास)। समृद्धि—**सुमगधम्** (मगध देशवालों की समृद्धि), **सुभारतम्**। व्यृद्धि—**दुर्मगधम्** (मगध देशवालों के ऐश्वर्य का अभाव), **दुर्गवदिकम्**। अर्थाभाव—**निर्मक्षिकम्** (मक्खियों का अभाव), **निर्मशकम्** (मच्छरों का अभाव)। अत्यय—**निर्हिमं वर्त्तते** (शीतकाल व्यतीत हो गया), **निःशीतम्**। असंप्रति—**अतितैसृकम्**[1] **वर्त्तते** (तैसृक ओढ़ने का अब समय नहीं है)। शब्दप्रादुर्भाव—**इतिपाणिनि** (पाणिनि शब्द की प्रसिद्धि), **तत्पाणिनि**। पश्चात्—**अनुरथं पादातम्** (रथों के पीछे-पीछे पैदल सेना)। यथार्थ—**यथा शब्द के चार अर्थ हैं—योग्यता, वीप्सा, पदार्थानतिवृत्ति, और सादृश्य। यहां क्रम से उदाहरण देते हैं**—योग्यता—**अनुरूपम्** (रूप के योग्य होता है)। वीप्सा—**प्रत्यर्थं शब्द-निवेश:** (अर्थ-अर्थ के प्रति शब्द का व्यवहार होता है)। पदार्थानतिवृत्ति—**यथाशक्ति** (शक्ति का उल्लङ्घन न करके)। सादृश्य—यथाऽसादृश्ये (२।१।७) में **सादृश्य अर्थ का प्रतिषेध किये जाने से यहां सादृश्य का उदाहरण नहीं दिया जा सकता ॥** आनु-पूर्व्य—**अनुज्येष्ठं प्रविशन्तु भवन्त:** (जो-जो ज्येष्ठ हों, वैसे-वैसे क्रम से प्रवेश करते

---

१. तिसृका नाम का एक ग्राम है, उसमें होनेवाला (तत्र भव: ४।३।५३), अथवा वहां से आनेवाला (तत आगत: ४।३।७४) पदार्थ तैसृक कहा जायगा। तैसृक कोई ओढ़ने का गरम कपड़ा होगा, जिसके उपभोग का सम्प्रति प्रतिषेध है, ऐसा अनुमान है। यह कपड़ा तिसृका ग्राम में बनता होगा, यह भी सम्भव है ॥

जायें)। यौगपद्य—सचक्रं धेहि (एक साथ चक्कर लगायें)। सादृश्य—ससखि (सखी के तुल्य)। सम्पत्ति——सब्रह्म बाभ्रवाणाम् (बभ्रु कुलवालों का ब्राह्मणानुरूप आत्मभाव होना), सक्षत्रं शालङ्कायनानाम् (शालङ्कायनों का क्षत्रियानुरूप होना)। साकल्य—सतृणमभ्यवहरति (तिनके समेत खा जाता है), सबुसम्। अन्तवचन—साग्नि अधीते (अग्निविद्या के समाप्तिपर्यन्त पढ़ता है), ससमासमष्टाध्यायीमधीते (समास की समाप्तिपर्यन्त अष्टाध्यायी पढ़ता है)॥

अधिस्त्रि, उपाग्नि आदि की सिद्धि हम परि० १।१।४० में दिखा आये हैं। समास की सिद्धियां तो हम और भी बहुत बार दिखा चुके हैं। अव्ययीभाव समास की सिद्धि में ३-४ कार्यविशेष होते हैं। प्रथम—अव्ययीभावश्च (१।१।४०) से अव्यय संज्ञा होकर अव्ययादाप्सुपः (२।४।८२) से समास के पश्चात् आई हुई विभक्ति का लुक् हो जाना। द्वितीय—अदन्त शब्द हो, तो अव्ययादाप्सुपः से लुक् न होकर नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः (२।४।८३) से विभक्ति को अम् हो जायगा। जैसे 'उपकुम्भ सु' में सु को अम् होकर उपकुम्भम् बना है। तृतीय—अव्ययीभावश्च (२।४।१८) से अव्ययीभाव समास को नपुंसक लिङ्ग होकर, ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य (१।२।४७) से ह्रस्व होता है। जैसे अधिकुमारि में कुमारी को ह्रस्व हो गया है॥ पाठक देखें कि सम्पूर्ण सूत्र के उदाहरणों तथा अव्ययीभाव के सारे प्रकरण में यही विशेष कार्य हुए हैं। शेष समास की सिद्धि तो पूर्व दिखा ही चुके हैं। अधि उप सु इत्यादि अव्यय हैं। सिद्धि में एक बात और ध्यान देने की है कि जिस विभक्ति में विग्रह करें, उसी को रखकर समास करना चाहिये। यथा 'कुम्भस्य समीपम्' में षष्ठी से विग्रह है, सो 'कुम्भ ङस् उप सु' रख के समास करेंगे॥

विशेषः——विभाषा (२।१।११) अधिकार से पहले-पहले तक ये सब सूत्र नित्य समास करते हैं। "यस्य स्वपदविग्रहो नास्ति स नित्यसमासः", जिस समास का अपने पदों से विग्रहवाक्य प्रयुक्त न हो, केवल समस्त पद प्रयोग में आये, उसे नित्य समास कहते हैं। सो यहां नित्य समास होने से, इनका विग्रह नहीं होता। पुनरपि केवल अर्थप्रदर्शनार्थ इनका विग्रह किया गया है॥

यहाँ से 'अव्ययम्' की अनुवृत्ति २।१।८ तक जायेगी॥

अव्ययीभाव

यथाऽसादृश्ये ॥२।१।७॥

यथा अ० ॥ असादृश्ये ७।१॥ स०—असादृश्य इत्यत्र नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—अव्ययम्, सुप्, समासः, सह सुपा, अव्ययीभावः ॥ अर्थः—असादृश्येऽर्थे वर्त्तमानं यथा इत्येतदव्ययं समर्थेन सुबन्तेन सह समस्यते, अव्ययीभावसंज्ञकश्च समासो भवति॥

उदा०—ये ये वृद्धाः=यथावृद्धम्, यथाध्यापकम् । ये ये चौराः=यथाचौरं बध्नाति, यथापण्डितं सत्करोति ॥

भाषार्थः—[असादृश्ये] असादृश्य अर्थ में वर्त्तमान [यथा] यथा अव्यय का समर्थ सुबन्त के साथ समास हो जाता है, और वह अव्ययीभाव समास कहा जाता है ॥

उदा०—यथावृद्धम् (जो-जो वृद्ध हैं), यथाध्यापकम् । यथाचौरं बध्नाति (जो-जो चोर हैं, उन-उनको बांधता है), यथापण्डितं सत्करोति (जो-जो पण्डित हैं, उन-उन का सत्कार करता है) ॥

यावदवधारणे ॥२।१।८॥ अव्ययीभाव

यावत् अ० ॥ अवधारणे ७।१॥ अनु०—अव्ययम्, सुप्, समासः, सह सुपा, अव्ययीभावः ॥ अर्थः—अवधारणेऽर्थे वर्त्तमानं यावद् इत्येतदव्ययं समर्थेन सुबन्तेन सह समस्यते, अव्ययीभावश्च समासो भवति ॥ उदा०—यावन्ति अमत्राणि=यावदमत्र ब्राह्मणान् आमन्त्रयस्व । यावन्ति कार्षापणानि=यावत्कार्षापणम् फलं क्रीणाति ॥

भाषार्थः—[यावत्] यावत् अव्यय [अवधारणे] अवधारण अर्थात् परिमाण का निश्चय करने अर्थ में वर्त्तमान हो, तो उसका समर्थ सुबन्त के साथ समास होता है, और वह अव्ययीभावसंज्ञक होता है ॥

उदा०—यावदमत्रं ब्राह्मणान् आमन्त्रयस्व (जितने पात्र हैं, उतने ब्राह्मणों को बुलाओ) । यावत्कार्षापणं फलं क्रीणाति (जितने कार्षापण हैं, उतने फल खरीदता है) ॥

सुप् प्रतिना मात्रार्थे ॥२।१।९॥ अव्ययीभाव

सुप् १।१॥ प्रतिना ३।१॥ मात्रार्थे ७।१॥ स०—मात्रायाः अर्थः मात्रार्थः, तस्मिन्, षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—[1]समासः, सह सुपा, अव्ययीभावः ॥ अर्थः—मात्रार्थे=स्वल्पार्थे वर्त्तमानेन प्रतिना सह समर्थं सुबन्तं समस्यते अव्ययीभावश्च समासो भवति ॥ अस्त्यत्र किञ्चित् शाकम्=शाकप्रति, सूपप्रति ॥ अर्थप्रदर्शनार्थ-मत्र विग्रहः प्रदर्श्यते ॥

भाषार्थः—[मात्रार्थे] मात्रा अर्थात् स्वल्प अर्थ में वर्त्तमान [प्रतिना] प्रति शब्द के साथ समर्थ [सुप्] सुबन्त का समास हो जाता है, और वह अव्ययीभाव समास होता है ॥ उदा०—शाकप्रति (थोड़ा शाक), सूपप्रति (थोड़ी दाल) ॥

---

१. यहां २।१।२ सूत्र से सुप् की अनुवृत्ति आ रही है । पुनः जो 'सुप्' इस सूत्र में कहा, वह 'अव्ययं' की निवृत्ति के लिए है । अतः यहां 'सुप्' के आते हुए भी सुप् का सम्बन्ध नहीं दिखाया ॥

अक्षशलाकासंख्याः परिणा ॥२।१।१०॥

अक्षशलाकासंख्याः १।३॥ परिणा ३।१॥ स०—अक्षश्च शलाका च संख्या च अक्षशलाकासंख्याः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ **अनु०**—अव्ययीभावः, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ **अर्थः**—अक्षशब्दः शलाका शब्दः संख्याशब्दाश्च परिशब्देन सह समस्यन्ते, अव्ययीभावश्च समासो भवति ॥ द्यूतक्रीडायाम् अयं समास इष्यते । पञ्चिका नाम द्यूतं पञ्चभिरक्षैः शलाकाभिर्वा भवति । तत्र यदा सर्वे उत्ताना अवाञ्चो वा पतन्ति, तदा पातयिता जयति,अन्यथा पाते तु पराजयो जायते ॥ उदा०—अक्षेणेदं न तथा वृत्तं यथा जये=अक्षपरि । शलाकापरि । एकपरि, द्विपरि ॥

भाषार्थः—[अक्षशलाकासंख्याः] अक्ष शलाका तथा संख्यावाची जो शब्द हैं, वे [परिणा] परि सुबन्त के साथ समास को प्राप्त होते हैं, और वह समास अव्ययीभावसंज्ञक होता है ॥ यह समास द्यूतक्रीडा सम्बन्धी है । पञ्चिका नामक द्यूत में पांचों अक्षों या शालाकाओं के सीधे या उलटे गिरने पर फेंकनेवाले की जय होती है । एक, दो, तीन या चार अक्षों या शलाकाओं के विपरीत पड़ने पर पराजय मानी जाती है ॥

उदा०—अक्षपरि (जब एक पासा उल्टा गिरा हो अर्थात् हारा हो, उसे अक्षपरि कहते हैं) । शलाकापरि (इसमें भी शलाका उलटी पड़ गई) । एकपरि (एक की कमी से हार गया), द्विपरि (दो की कमी से हार गया) ॥ समास करने से अव्ययादाप्सुपः (२।४।८२) **से सु का लुक् करना ही प्रयोजन है ॥**

विभाषाऽपपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्या॥२।१।११॥

विभाषा १।१॥ अपपरिबहिरञ्चवः १।३॥ पञ्चम्या ३।१॥ स०—अपश्च परिश्च बहिश्च अञ्चुश्च अपपरिबहिरञ्चवः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ **अनु०**—सुप्, सह सुपा, समासः, अव्ययीभावः ॥ **अर्थः**—अप परि बहिस् अञ्चु इत्येते सुबन्ताः पञ्चम्यन्तेन समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यन्ते, अव्ययीभावश्च समासो भवति ॥ उदा०—अपत्रिगर्त्तं वृष्टो देवः, अप त्रिगर्तेभ्यो वृष्टो देवः । परित्रिगर्त्तम्, परि त्रिगर्तेभ्यो वा । बहिर्ग्रामम्, बहिर्ग्रामात् । प्राग्ग्रामम्, प्राग्ग्रामात् ॥

भाषार्थः—[अपपरिबहिरञ्चवः] **अप परि बहिस् अञ्चु ये सुबन्त** [पञ्चम्या] **पञ्चम्यन्त समर्थ सुबन्त के साथ** [विभाषा] **विकल्प से समास को प्राप्त होते हैं, और वह अव्ययीभाव समास होता है ॥**

उदा०—अपत्रिगर्त्तं वृष्टो देवः (त्रिगर्त्त देश=कांगड़ा को छोड़कर वर्षा हुई), अप त्रिगर्त्तेभ्यो वृष्टो देवः । परित्रिगर्त्तं, परि त्रिगर्त्तेभ्यो वा (त्रिगर्त्त को छोड़

कर वर्षा हुई)। बहिर्ग्रामम्, बहिर्ग्रामात् (ग्राम से बाहर)। प्राग्ग्रामम्, प्राग्ग्रामात् (ग्राम से पूर्व)॥

असमास पक्ष में अपपरी वर्जने (१।४।८७) से कर्मप्रवचनीय संज्ञा होकर पञ्चमी विभक्ति पञ्चम्यपाङ्परिभिः (२।३।१०) से होती है। समास पक्ष में सु आकर नाव्ययी० (२।४।८३) से पूर्ववत् सु को अम् हो गया है॥

यहाँ से 'विभाषा' का अधिकार २।२।२६ तक जाता है। इसे 'महाविभाषा' कहते हैं। 'पञ्चम्या' की अनुवृत्ति भी २।१।१२ तक जाती है॥

अव्ययीभाव

आङ् मर्यादाभिविध्योः ॥२।१।१२॥

आङ् अ० ॥ मर्यादाभिविध्योः ७।२॥ स०—मर्यादा च अभिविधिश्च मर्यादाभिविधी, तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—विभाषा, पञ्चम्या, सुप्, सह सुपा, समासः, अव्ययीभावः ॥ अर्थः—मर्यादाभिविध्योः वर्त्तमान आङ् इत्येष शब्दः समर्थेन पञ्चम्यन्तेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यते, अव्ययीभावश्च समासो भवति ॥ उदा०—आपाटलिपुत्रं वृष्टो देवः, आ पाटलिपुत्राद् वृष्टो देवः। अभिविधौ—आकुमारं यशः पाणिनेः, आ कुमारेभ्यो यशः पाणिनेः॥

भाषार्थः—[मर्यादाभिविध्योः] मर्यादा और अभिविधि अर्थ में वर्त्तमान [आङ्] आङ् शब्द समर्थ पञ्चम्यन्त सुबन्त के साथ विकल्प से समास को प्राप्त होता है, और वह समास अव्ययीभावसंज्ञक होता है॥ उदाहरण में पूर्व सूत्र के समान पञ्चमी विभक्ति हुई है, तथा आङ्मर्यादावचने (१।४।८८) से आङ् की कर्मप्रवचनीय संज्ञा हुई है। मर्यादा एवं अभिविधि के विषय में आङ् मर्यादा० (१।४।८८) सूत्र देखें॥

अव्ययीभाव

लक्षणेनाभिप्रती आभिमुख्ये ॥२।१।१३॥

लक्षणेन ३।१॥ अभिप्रती १।२॥ आभिमुख्ये ७।१॥ अनु०—विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः, अव्ययीभावः ॥ अर्थः—अभिप्रती इत्येतौ शब्दौ आभिमुख्ये वर्त्तमानौ लक्षणवाचिना समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्येते, अव्ययीभावश्च समासो भवति ॥ उदा०—अभ्यग्नि शलभाः पतन्ति, अग्निम् अभि। प्रत्यग्नि, अग्निम् प्रति। अग्निं लक्ष्यीकृत्य शलभाः पतन्ति इत्यर्थः॥

भाषार्थः—[लक्षणेन] लक्षणवाची सुबन्त के साथ [आभिमुख्ये] आभिमुख्य अर्थ में वर्त्तमान [अभिप्रती] अभि प्रति शब्दों का विकल्प से समास हो जाता है, और वह अव्ययीभाव समास होता है॥

उदा०—अभ्यग्नि शलभाः पतन्ति (अग्नि को लक्ष्य करके पतङ्गे गिरते हैं),

अग्निम् अभि । प्रत्यग्नि (अग्नि की ओर), अग्निम् प्रति ॥ प्रत्यग्नि की सिद्धि परि० १।१।४० में कर चुके हैं ॥

यहाँ से 'लक्षणेन' की अनुवृत्ति २।१।१५ तक जाती है ॥

अनुर्यत्समया ॥२।१।१४॥

अनुः १।१॥ यत्समया अ० ॥ स०—यस्य समया, यत्समया, षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—लक्षणेन, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः, अव्ययीभावः ॥ अर्थः—अनुः यस्य समीपवाची तेन लक्षणभूतेन समर्थेन सुबन्तेन सह विभाषा समस्यते, अव्ययी-भावश्च समासो भवति ॥ उदा०—अनुवनम् अशनिर्गतः, अनुपर्वतम् । वनस्य अनु, पर्वतस्य अनु ॥

भाषार्थः—[यत्समया] जिसका समीपवाची [अनुः] अनु सुबन्त हो, उस लक्षणवाची सुबन्त के साथ अनुशब्द विकल्प से समास को प्राप्त होता है, और वह अव्ययीभाव समास होता है ॥

उदा०—अनुवनम् अशनिर्गतः (वन के समीप बिजली चमकी), अनुपर्वतम् । वनस्य अनु, पर्वतस्य अनु ॥ समास होने से अव्ययीभावश्च (२।४।१८) से नपुंसक लिङ्ग हो गया है ॥

यहाँ से 'अनुः' की अनुवृत्ति २।१।१५ तक जाती है ॥

यस्य चायामः ॥२।१।१५॥

यस्य ६।१॥ च अ० ॥ आयामः १।१॥ अनु०—अनुः, लक्षणेन, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः, अव्ययीभावः ॥ अर्थः—अनुर्यस्यायामः= दैर्घ्यवाची तेन लक्षण-वाचिना समर्थेन सुबन्तेन सह विभाषा समस्यते, अव्ययीभावश्च समासो भवति ॥ उदा०—अनुगङ्गं वाराणसी, गङ्गाया अनु । अनुयमुनं मथुरा, यमुनाया अनु ॥

भाषार्थः—अनु शब्द [यस्य] जिसका [आयामः] दीर्घतावाची हो,ऐसे लक्षणवाची समर्थ सुबन्त के साथ [च] भी अनु शब्द विकल्प करके समास को प्राप्त हो, और वह अव्ययीभाव समास हो ॥

उदा०—अनुगङ्गं वाराणसी, गङ्गाया अनु । अनुयमुनं मथुरा, यमुनाया अनु (गङ्गा की लम्बाई के साथ-साथ वाराणसी बसी हुई है । तथा यमुना की लम्बाई के साथ साथ मथुरा बसी हुई है)॥ पूर्ववत् ही समास होने से ह्रस्व यहाँ भी जानें ॥

तिष्ठद्गुप्रभृतीनि च ॥२।१।१६॥

तिष्ठद्गुप्रभृतीनि १।३॥ च अ० ॥ स०—तिष्ठद्गु प्रभृति येषां तानि तिष्ठद्गुप्रभृतीनि, बहुव्रीहिः ॥ अनु०—अव्ययीभावः समासः ॥ अर्थः—तिष्ठद्गु

इत्येवमादीनि समुदायरूपाणि अव्ययीभावसंज्ञाकानि निपात्यन्ते ॥ उदा०—तिष्ठन्ति गावो यस्मिन् काले दोहनाय स=तिष्ठद्गु कालः। वहन्ति गावो यस्मिन् काले स=वहद्गु कालः ॥

भाषार्थः—[तिष्ठद्गुप्रभृतीनि] तिष्ठद्गु इत्यादि समुदायरूप शब्दों की [च] भी अव्ययीभाव संज्ञा निपातन से होती है ॥ गण में ये शब्द जैसे पढ़े हैं, वैसे ही साधु समझने चाहिएं। विग्रह अर्थप्रदर्शन के लिए है ॥

उदा०—तिष्ठन्ति गावो यस्मिन् काले दोहनाय स=तिष्ठद्गु कालः (जिस समय गौएं दोहन के लिए अपने स्थान पर ठहरती हैं)। वहन्ति गावो यस्मिन् काले स=वहद्गु कालः ॥ अव्ययीभाव संज्ञा होने से पूर्ववत् सु का लुक् होता है। तिष्ठद्गु आदि में गोस्त्रियोरुप० (१।२।४८), तथा एच इग्घ्रस्वादेशे (१।१।४७) से 'गो' को ह्रस्व भी हो जायेगा ॥

पारे मध्ये षष्ठ्या वा ॥२।१।१७॥

अव्ययीभाव

पारे मध्ये उभयत्र लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ षष्ठ्या ३।१॥ वा अ० ॥ अनु०—अव्ययीभावः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—पारमध्यशब्दौ षष्ठ्यन्तेन सुबन्तेन सह विभाषा समस्येते, अव्ययीभावश्च समासो भवति, तत्सन्नियोगेन चैतयोरेकारान्तत्वं निपात्यते ॥ षष्ठीसमासापवादसूत्रमिदम्। वा वचनात् सोऽपि भवति। महाविभाषया तु विग्रहवाक्यविकल्पो भवति। तेन त्रीणि रूपाणि सिद्ध्यन्ति ॥ उदा०—पारेगङ्गम्, पारं गङ्गायाः। षष्ठीसमासपक्षे—गङ्गापारम् ॥ मध्येगङ्गम्, मध्यं गङ्गायाः। षष्ठीसमासपक्षे—गङ्गामध्यम् ॥

भाषार्थः—[पारे मध्ये] पार मध्य शब्दों का [षष्ठ्या] षष्ठ्यन्त सुबन्त के साथ [वा] विकल्प से अव्ययीभाव समास होता है, तथा अव्ययीभाव समास के साथ-साथ इन शब्दों को एकारान्तत्व भी निपातन से हो जाता है ॥ प्रकृत महाविभाषा से विग्रह वाक्य का विकल्प होता है, तथा सूत्र में कहे 'वा' से षष्ठी तत्पुरुष समास भी पक्ष में पक्ष होता है, क्योंकि यह सूत्र षष्ठीसमास का अपवाद है ॥ षष्ठीसमास पक्ष में गङ्गा की (१।२।४३ से) उपसर्जन संज्ञा हुई है, सो उपसर्जनं पूर्वम् (२।२।३०) से गङ्गा का पूर्वनिपात हुआ है। नपुंसकलिङ्ग होने से सु को अतोऽम् (७।१।२४) से अम् आदेश हुआ है। अव्ययीभाव समास पक्ष में तो पूर्ववत् गङ्गा को ह्रस्वत्व, तथा अम् हो जायेगा, कोई विशेष नहीं है ॥

उदा०—पारेगङ्गम् (गङ्गा के पार), पारं गङ्गायाः। षष्ठीसमास-पक्ष में

—गङ्गापारम् । मध्येगङ्गम् (गङ्गा के बीच में), मध्यं गङ्गायाः । षष्ठीसमास-पक्ष में—गङ्गामध्यम् ॥

अव्ययीभाव

सङ्ख्या वंश्येन ॥२।१।१८॥

सङ्ख्या १।१॥ वंश्येन ३।१॥ अनु०—विभाषा, अव्ययीभावः, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ वंशे भवः वंश्यः, दिगादिभ्यो यत् (४।३।५४) इति यत्प्रत्ययः ॥ अर्थः—संख्यावाचिसुबन्तं वंश्यवाचिना समर्थेन सुबन्तेन सह विभाषा समस्यते, अव्ययीभावश्च समासो भवति ॥ उदा०—द्वौ मुनी व्याकरणस्य वंश्यौ, द्विमुनि व्याकरणस्य । त्रिमुनि व्याकरणस्य ॥

भाषार्थः—[संख्या] संख्यावाची सुबन्त [वंश्येन] वंश्यवाची समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समास को प्राप्त होता है, और वह अव्ययीभाव समास होता है ॥

उदा०—द्वौ मुनी व्याकरणस्य वंश्यौ, द्विमुनि व्याकरणस्य (व्याकरण के दो मुनि=पाणिनि तथा कात्यायन) । त्रिमुनि व्याकरणस्य (व्याकरण के तीन मुनि=पाणिनि पतञ्जलि और कात्यायन) ॥

'वंश' विद्या अथवा जन्म से प्राणियों के एकरूपता होने को कहते हैं । सो उदाहरण में दोनों मुनियों की विद्या से समानता होने से एक ही वंश है । विभक्ति-लुक् ही समास का प्रयोजन है ॥

यहाँ से 'संख्या' की अनुवृत्ति २।१।१९ तक जाती है ॥

अव्ययीभाव

नदीभिश्च ॥२।१।१९॥

नदीभिः ३।१॥ च अ० ॥ अनु०—संख्या, विभाषा, अव्ययीभावः, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—संख्यावाचिसुबन्तं नदीवाचिना समर्थेन सुबन्तेन सह विभाषा समस्यते, अव्ययीभावश्च समासो भवति ॥ उदा०—सप्तानां गङ्गानां समाहारः=सप्तगङ्गम् । द्वयोः यमुनयोः समाहारः=द्वियमुनम् । पञ्चनदम् । सप्तगोदावरम् ॥

भाषार्थः—संख्यावाची सुबन्त [नदीभिः] नदीवाची समर्थ सुबन्तों के साथ [च] भी विकल्प से समास को प्राप्त होते हैं, और वह समास अव्ययीभावसंज्ञक होता है ॥

उदा०—सप्तानां गङ्गानां समाहारः=सप्तगङ्गम् (गङ्गा की सात धारायें जैसा कि हरिद्वार में हैं) । द्वयोः यमुनयोः समाहारः=द्वियमुनम् (यमुना की दो शाखायें) । पञ्चनदम् (पांच नदियों का जहां संगम हो)। सप्तगोदावरम् (गोदावरी नदी की सात धारायें) ॥ पञ्चनदम् तथा सप्तगोदावरम् में गोदावर्याश्च नद्याश्च०

(का० ५।४।७५) से समासान्त अच् प्रत्यय होकर, यस्येति च (६।४।१४८) से ईकार का लोप हो जाता है ॥

यहाँ से 'नदीभिः' की अनुवृत्ति २।१।२० तक जायेगी ॥

अन्यपदार्थे च संज्ञायाम् ॥२।१।२०॥ अव्ययीभाव

अन्यपदार्थे ७।१॥ च अ० ॥ संज्ञायाम् ७।१॥ स०—अन्यच्चादः पदं चेति अन्यपदम्,कर्मधारयः । अन्यपदस्यार्थः अन्यपदार्थः,तस्मिन्,षष्ठीतत्पुरुषः॥ **अनु०**—नदीभिः, अव्ययीभावः, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ **अर्थः**—अन्यपदार्थे गम्यमाने संज्ञायां विषये सुबन्तं नदीवाचिना समर्थेन सुबन्तेन सह समस्यते, अव्ययीभावश्च समासो भवति ॥ उदा०—उन्मत्तगङ्गम् । लोहितगङ्गम् ॥

भाषार्थः—[अन्यपदार्थे] अन्यपदार्थ गम्यमान होने पर [च] भी [संज्ञायाम्] संज्ञाविषय में सुबन्त का नदीवाची समर्थ सुबन्त के साथ समास होता है, और वह अव्ययीभाव समास होता है ॥

यहाँ 'विभाषा' के आने पर भी नित्यसमास ही होता है । क्योंकि विग्रहवाक्य से संज्ञा की प्रतीति ही नहीं हो सकती । अतः हम अनुवृत्ति में विभाषा पद नहीं लाये हैं ॥

उदा०—उन्मत्तगङ्गम् (जिस देश में गङ्गा उन्मत्त होकर बहती है, वह देश) । लोहितगङ्गम् ॥

तत्पुरुषः ॥२।१।२१॥ तत्पुरुष

तत्पुरुषः १।१॥ **अनु०**—सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अधिकारोऽयम् । इतोऽग्रे यः समासः स तत्पुरुषसंज्ञको भवतीति वेदितव्यम्, २।२।२३ इति यावत् ॥ उदाहरणानि अग्रे वक्ष्यन्ते ॥

भाषार्थः—यह अधिकार और संज्ञासूत्र है । यहाँ से आगे जो समास कहेंगे, उसकी [तत्पुरुषः] तत्पुरुष संज्ञा जाननी चाहिए ॥

विशेषः—तत्पुरुष समास प्रायः उत्तरपदार्थ-प्रधान होता है । यथा—राजपुरुषः में षष्ठीतत्पुरुष है । सो यहाँ पर 'पुरुष' की प्रधानता है, क्योंकि राजपुरुषम् आनय कहने पर लोग पुरुष को लाते हैं, राजा को नहीं लाते । इससे पता लगता है कि यहाँ उत्तरपद 'पुरुष' की ही प्रधानता है ॥

द्विगुश्च ॥२।१।२२॥ द्विगु

द्विगुः १।१॥ च अ० ॥ **अनु०**—तत्पुरुषः ॥ **अर्थः**—द्विगुसमासस्तत्पुरुषसंज्ञको

भवति ॥ संज्ञासूत्रमिदम् ॥ उदा०—पञ्चराजम्, दशराजम् । द्वयहः, त्र्यहः । पञ्चगवम्, दशगवम् ॥

भाषार्थः—[द्विगुः] द्विगु समास की [च] भी तत्पुरुष संज्ञा होती है ॥ संख्यापूर्वो द्विगुः (२।१।५१) से द्विगु-संज्ञा का विधान किया है । इस सूत्र से तत्पुरुष संज्ञा भी हो जाती है ॥

द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः ॥२।१।२३॥

द्वितीया १।१॥ श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः ३।३॥ स०—श्रितातीत० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—द्वितीयान्तं सुबन्तं श्रित, अतीत, पतित, गत, अत्यस्त, प्राप्त, आपन्न इत्येतैः समर्थैः सुबन्तैः सह विकल्पेन समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ उदा०—कष्टं श्रितः, कष्टश्रितः । अरण्यम् अतीतः, अरण्यातीतः । कूपं पतितः, कूपपतितः । नगरं गतः, नगरगतः । तरङ्गान अत्यस्तः, तरङ्गात्यस्तः । आनन्दं प्राप्तः, आनन्दप्राप्तः । सुखम् आपन्नः, सुखापन्नः ॥

भाषार्थः—[द्वितीया] द्वितीयान्त सुबन्त [श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः] श्रित इत्यादि समर्थ सुबन्तों के साथ विकल्प से समास को प्राप्त होता है, और वह समास तत्पुरुषसंज्ञक होता है ॥

उदा०—कष्टं श्रितः, कष्टश्रितः (कष्ट को प्राप्त हुआ) । अरण्यम् अतीतः, अरण्यातीतः (जङ्गल को उलङ्घन कर गया) । कूपं पतितः, कूपपतितः (कूँए में गिरा हुआ) । नगरं गतः, नगरगतः (नगर को गया हुआ) । तरङ्गान् अत्यस्तः, तरङ्गात्यस्तः (लहरों में फेंका हुआ) । आनन्दं प्राप्तः, आनन्दप्राप्तः (आनन्द को प्राप्त हुआ) । सुखम् आपन्नः, सुखापन्नः (सुख को प्राप्त हुआ) ॥

यहाँ से 'द्वितीया' की अनुवृत्ति २।१।२८ तक जाती है ॥

स्वयं क्तेन ॥२।१।२४॥

स्वयम् अ० ॥ क्तेन ३।१॥ अनु०—तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—स्वयमित्येतद् अव्ययम् क्तान्तेन समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ उदा०—स्वयं धौतौ पादौ, स्वयंधौतौ । स्वयं भुक्तम्, स्वयंभुक्तम् ॥

भाषार्थः—[स्वयम्] स्वयं इस अव्यय शब्द का [क्तेन] क्तान्त समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समास होता है, और वह तत्पुरुष समास होता है ॥ स्वयं शब्द अव्यय है,अतः यहां 'द्वितीया' की अनुवृत्ति का सम्बन्ध नहीं बिठाया है । क्योंकि अव्यय द्वितीयान्त हो ही नहीं सकता ॥

उदा०—स्वयंधौतौ पादौ (स्वयं धोये हुये दो पैर)। स्वयंभुक्तम् (स्वयं खाया हुआ)॥

यहाँ से 'क्तेन' की अनुवृत्ति २।१।२७ तक जायेगी॥

खट्वा क्षेपे ॥२।१।२५॥

तत्पुरुष

खट्वा १।१॥ क्षेपे ७।१॥ अनु०—क्तेन, द्वितीया, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, समासः॥ अर्थः—द्वितीयान्तः खट्वाशब्दः क्षेपे गम्यमाने क्तान्तेन समर्थेन सुबन्तेन सह समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति॥ उदा०—खट्वारूढोऽयं दुष्टः। खट्वाप्लुतः॥

भाषार्थः—[क्षेपे] निन्दा गम्यमान हो, तो [खट्वा] द्वितीयान्त खट्वा शब्द क्तान्त सुबन्त के साथ समास को प्राप्त होता है, और वह तत्पुरुष समास होता है॥

उदा०—खट्वारूढोऽयं दुष्टः (बिना गुरुजनों की आज्ञा के ही यह दुष्ट गृहस्थ में चला गया)। खट्वाप्लुतः (कुमार्गगामी हो गया)॥ विद्या पढ़कर गुरु से आज्ञा लेकर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहिये। जो ऐसा नहीं करता वह निन्दा का पात्र है। उसी को यहां 'खट्वारूढः' कहा है,सो यहाँ क्षेप गम्यमान है॥ यहाँ विग्रह-वाक्य से क्षेप की प्रतीति नहीं होती, अतः यहाँ विभाषा का सम्बन्ध अधिकार आते हुये भी नहीं बैठता। अतः यह भी नित्य समास है॥

सामि ॥२।१।२६॥

तत्पुरुष

सामि अ० ॥ अनु०—क्तेन, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः॥ अर्थः—सामि इत्येतदव्ययम् क्तान्तेन समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति॥ उदा०—सामिकृतम्। सामिपीतम्। सामिभुक्तम्॥

भाषार्थः—[सामि] सामि इस अव्यय शब्द का क्तान्त समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समास होता है, और वह तत्पुरुष समास होता है॥ यहाँ भी सामि शब्द के अव्यय होने से 'द्वितीया' पद का सम्बन्ध नहीं बैठा है॥ उदा०—सामिकृतम् (आधा किया हुआ)। सामिपीतम्। सामिभुक्तम्॥

कालाः ॥२।१।२७॥

तत्पुरुष

कालाः १।३॥ अनु०—क्तेन, द्वितीया, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः॥ अर्थः—कालवाचिनो द्वितीयान्ताः शब्दाः क्तान्तेन समर्थेन सुबन्तेन सह विभाषा समस्यन्ते,तत्पुरुषश्च समासो भवति॥ अनत्यन्तसंयोगार्थमिदं वचनम्,अत्यन्त-संयोगे ह्युत्तरसूत्रेण क्रियते॥ उदा०—अहरतिसृता मुहूर्त्ताः। अहस्सङ्क्रान्ताः। राज्यतिसृता मुहूर्त्ताः। रात्रिसङ्क्रान्ताः। मासप्रमितश्चन्द्रमाः, मासं प्रमातुमारब्धः प्रतिपच्चन्द्रमा इत्यर्थः॥

भाषार्थः— [कालाः] कालवाची द्वितीयान्त शब्द का क्तान्त समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समास हो जाता है, और वह तत्पुरुष समास होता है ॥ अनत्यन्त-संयोग में समास हो जाये, इसलिये यह सूत्र है। अत्यन्तसंयोग में तो अगले सूत्र से समास प्राप्त ही था। उदाहरणों में अनत्यन्तसंयोग कैसे है, यह परिशिष्ट में देखें ॥

यहाँ से 'कालाः' की अनुवृत्ति २।१।२८ तक जायेगी ॥

तत्पुरुष

अत्यन्तसंयोगे च ॥२।१।२८॥

अत्यन्तसंयोगे ७।१॥ च अ० ॥ स०—अत्यन्तः संयोगः अत्यन्तसंयोगः, तस्मिन्, कर्मधारयतत्पुरुषः ॥ अनु०—कालाः, द्वितीया, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—अत्यन्तसंयोगः = कृत्स्नसंयोगः, तस्मिन् गम्यमाने कालवाचिनो द्वितीयान्ताः शब्दाः समर्थेन सुबन्तेन सह विभाषा समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ उदा०—मुहूर्त्तं सुखम् = मुहूर्त्तसुखम् । सर्वरात्रकल्याणी । सर्वरात्रशोभना ॥

भाषार्थः— [अत्यन्तसंयोगे] अत्यन्त संयोग गम्यमान होने पर [च] भी कालवाची द्वितीयान्त शब्दों का समर्थ सुबन्तों के साथ विकल्प से समास होता है। अत्यन्त संयोग से अभिप्राय लगातार संयोग से है।

उदा०—मुहूर्त्तं सुखम् = मुहूर्त्तसुखम् (मुहूर्त्तभर सुख) । सर्वरात्रं कल्याणी = सर्वरात्रकल्याणी (कल्याणप्रद सारी रात) । सर्वरात्रशोभना (सुन्दर सारी रात)। सर्वरात्रि शब्द से यहाँ अहः सर्वैकदेशसं० (५।४।८७) से समासान्त अच् प्रत्यय होकर 'सर्वरात्र' बना है ॥

तृतीया तत्पुरुष

तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन ॥२।१।२९॥

तृतीया १।१॥ तत्कृत लुप्ततृतीयान्तनिर्देशः ॥ अर्थेन ३।१॥ गुणवचनेन ३।१॥ स०—तेन कृतम् तत्कृतम्, तृतीयातत्पुरुषः । गुणमुक्तवान् गुणवचनः, तेन, (उपपद) तत्पुरुषः ॥ अनु०—तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—तृतीयान्तं सुबन्तं तत्कृतेन = तृतीयान्तार्थकृतेन गुणवचनेन, अर्थशब्देन च सह समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ उदा०—शङ्कुलया खण्डः = शङ्कुलाखण्डः । किरिणा काणः = किरि-काणः । अर्थशब्देन—धान्येन अर्थः = धान्यार्थः ॥

भाषार्थः— [तृतीया] तृतीयान्त सुबन्त [तत्कृतार्थेन गुणवचनेन] तत्कृत = तृतीयान्तार्थकृत गुणवाची शब्द के साथ, तथा अर्थ शब्द के साथ समास को प्राप्त होता है और वह तत्पुरुष समास होता है ॥

विशेषः— जिसने पहले गुण को कहा था, किन्तु अब तद्वान् द्रव्य को ही कहता है, उसे "गुणवचन" कहते हैं। जैसे कि उदाहरण में खण्ड तथा काणशब्द क्रमशः खण्डन

(तोड़ना) तथा निमीलन (बन्द करना) गुण को पहले कहते थे, किन्तु अब 'खण्ड-गुण' अर्थात् खण्ड है गुण जिसका, तथा 'काणगुण' काण है गुण जिसका, उस द्रव्य को कहते हैं। सो खण्ड और काण गुणवचन शब्द हैं। यहाँ खण्डगुणोऽस्यास्तीति, काण-गुणोऽस्यास्तीति इस अर्थ में खण्ड तथा काण शब्द से मतुप् प्रत्यय (५।२।९४ से) आया था, पर उसका गुणवचनेभ्यो मतुपो लुक् (५।२।९४ वा०) इस वार्तिक से लुक् हो जाता है॥ तत्कृतार्थेन, यहाँ महाभाष्यकार ने योगविभाग किया है, अर्थात् 'तत्कृतेन' को गुणवचनेन का विशेषण माना है, एवं 'अर्थेन' इसको अलग माना है। सो अर्थ हुआ—"अर्थ शब्द के साथ भी समास होता है", जिसका उदाहरण है—'धान्यार्थः'। तत्कृत का अर्थ हुआ – तृतीयान्तार्थकृत। जैसे कि उदाहरण में शङ्कुलया (सरोते से), किरिणा (बाण से) तृतीयान्त हैं, सो तत्कृत ही खण्डत्व (टुकड़ा) एवं काणत्व (काना) है, अतः यहाँ समास हो गया है॥ उदा० – शङ्कुलाखण्डः (सरोते के द्वारा किया हुआ खण्ड=टुकड़ा)। किरिकाणः (बाण के द्वारा काना किया)। धान्यार्थः (धान्य से प्रयोजन)॥

यहाँ से 'तृतीया' की अनुवृत्ति २।१।३४ तक जायगी॥

पूर्वसदृशसमोनार्थकलहनिपुणमिश्रश्लक्ष्णैः ॥२।१।३०॥

पूर्वसदृश···श्लक्ष्णैः ३।३॥ स०—पूर्वसदृश० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः॥ अनु०—तृतीया, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः॥ अर्थः—तृतीयान्तं सुबन्तं पूर्व, सदृश, सम, ऊनार्थ, कलह, निपुण, मिश्र, श्लक्ष्ण इत्येतैः सुबन्तैः सह विभाषा समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति॥ उदा०—मासेन पूर्वः=मासपूर्वः, संवत्सरपूर्वः। मात्रा सदृशः=मातृसदृशः, भ्रातृसदृशः। मात्रा समः=मातृसमः। ऊनार्थे—कार्षापणेन ऊनं रूप्यं=कार्षापणोनम् रूप्यम्, कार्षापणन्यूनम्। वाचा कलहः=वाक्कलहः, असिकलहः। वाचा निपुणः=वाङ्निपुणः, विद्यानिपुणः। गुडेन मिश्रः=गुडमिश्रः, तिलमिश्रः। आचारेण श्लक्ष्णः=आचारश्लक्ष्णः॥

भाषार्थः—तृतीयान्त सुबन्त का [पूर्वसदृशसमोनार्थकलहनिपुणमिश्रश्लक्ष्णैः] पूर्वादि सुबन्तों के साथ विकल्प से समास हो जाता है, और वह तत्पुरुष समास होता है॥

उदा०—मासपूर्वः (एक मास पूर्व का), संवत्सरपूर्वः। मातृसदृशः (माता के तुल्य), भ्रातृसदृशः। मातृसमः (माता के समान), भ्रातृसमः। ऊनार्थ में—कार्षा-पणोनं रूप्यम् (कार्षापण से कम रुपया), कार्षापणन्यूनम्। वाक्कलहः (वाणी के द्वारा झगड़ा), असिकलहः (तलवार से लड़ाई)। वाङ्निपुणः (वाणी में निपुण), विद्यानिपुणः। गुडमिश्रः (गुड़ मिलाया हुआ), तिलमिश्रः। आचारश्लक्ष्णः (आचार से अच्छा)॥

तृतीया तत्पुरुष

कर्तृकरणे कृता बहुलम् ॥२।१।३१॥

कर्तृकरणे ७।१॥ कृता ३।१॥ बहुलम् १।१॥ स०—कर्ता च करणं च कर्तृकरणम्, तस्मिन्, समाहारद्वन्द्वः ॥ अनु०—तृतीया, तत्पुरुषः, सुप्,सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—कर्तरि करणे च या तृतीया तदन्तं सुबन्तं समर्थेन कृदन्तेन सुबन्तेन सह बहुलं समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ उदा०—अहिना हतः=अहिहतः, वृकहतः। करणे—दात्रेण लूनं=दात्रलूनम्, परशुना छिन्नः=परशुछिन्नः, नखैर्निभिन्नः=नखनिर्भिन्नः ॥

भाषार्थः—[कर्तृकरणे] कर्तृ वाची और करणवाची जो तृतीयान्त सुबन्त, वे समर्थ [कृता] कृदन्त सुबन्त के साथ [बहुलम्] बहुल करके समास को प्राप्त होते हैं, और वह तत्पुरुष समास होता है ॥

उदा०—अहिना हतः, में हननक्रिया का कर्ता अहि है। उस अहि कर्ता में तृतीया कर्तृकरणयोस्तृतीया (२।३।१८) से हुई है, अतः यह कर्तृवाची ही है ॥ दात्रेण लूनः, में लवन क्रिया का करण कारक दात्र है। सो यहाँ पूर्वोक्त सूत्र से करण कारक में तृतीया है, अतः यह करणवाची है ॥ हतः इत्यादि क्त-प्रत्ययान्त हैं, 'क्त' की कृदतिङ् (३।१।९३) से कृत् संज्ञा हो गई ॥

अहिना हतः=अहिहतः (सांप के द्वारा मारा हुआ), वृकहतः। करणे—दात्रेण लूनं=दात्रलूनम् (दरांती से काटा हुआ), परशुना छिन्नः=परशुछिन्नः (कुल्हाड़ी से काटा हुआ), नखैर्निभिन्नः=नखनिर्भिन्नः (नाखूनों के द्वारा तोड़ कर निकाला हुआ) ॥

विशेष—बहून् अर्थान् लातीति बहुलम्, जो बहुत अर्थों को प्राप्त करावे, उसे 'बहुल' कहते हैं। जो कि चार प्रकार का होता है। जिसका लक्षण निम्न प्रकार है—

क्वचित् प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः, क्वचिद् विभाषा क्वचिदन्यदेव।
विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य, चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति ॥

अर्थात् कहीं पर विधि न प्राप्त होते हुये भी कार्य होना, कहीं विधि प्राप्त होने पर भी कार्य न होना, कहीं विकल्प से होना, तथा कहीं और ही हो जाना, यह चार प्रकार का 'बहुल' देखने में आता है। सो जहाँ-जहाँ बहुल हो, वहाँ ऐसे ही कार्य जानना ॥

यहाँ से 'कर्तृकरणे' की अनुवृत्ति २।१।३२ तक जायेगी ॥

तृतीया तत्पुरुष

कृत्यैरधिकार्थवचने ॥२।१।३२॥

कृत्यैः ३।३॥ अधिकार्थवचने ७।१॥ स०—अधिकः (अध्यारोपितः) अर्थः

अधिकार्थः, तस्य वचनम् अधिकार्थवचनम्, षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—कर्त्तृकरणे, तृतीया, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—कर्त्तृवाचि करणवाचि तृतीयान्तं सुबन्तं समर्थैः कृत्यसंज्ञकप्रत्ययान्तैः सुबन्तैः सह अधिकार्थवचने गम्यमाने विभाषा समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ उदा०—काकैः पेया=काकपेया नदी; शुना लेह्यः=श्वलेह्यः कूपः । करणे—वाष्पेण छेद्यानि=वाष्पछेद्यानि तृणानि; कण्टकेन सञ्चेयः=कण्टकसञ्चेय ओदनः ॥

भाषार्थः—कर्त्तावाची तथा करणवाची जो तृतीयान्त सुबन्त, वह समर्थ [कृत्यैः] कृत्यप्रत्ययान्त सुबन्तों के साथ विकल्प से [अधिकार्थवचने] अधिकार्थवचन गम्यमान होने पर समास को प्राप्त होता है, और वह तत्पुरुष समास होता है ॥

किसी की स्तुति या निन्दा में कुछ बढ़कर अधिक बात बोल देना 'अधिकार्थवचन' होता है । पेया लेह्यः इत्यादि में यत् और ण्यत् प्रत्यय हुए हैं, सो कृत्याः (३।१।९५) से कृत्यसंज्ञक हैं ॥

उदा०—काकैः पेया=काकपेया नदी (इतने थोड़े[1] जलवाली नदी, जिसे कौए भी पी डालें), शुना लेह्यः=श्वलेह्यः कूपः (कुत्ते के चाट जाने योग्य कूँआ, अर्थात् समीप जलवाला) । करण में—वाष्पेण छेद्यानि=वाष्पछेद्यानि तृणानि (भाप से भी टूट जानेवाले कोमल तिनके); कण्टकेन सञ्चेयः=कण्टकसञ्चेय ओदनः (इतने थोड़े चावल, जो कांटे से भी इकट्ठे हो जायें) ॥

ऊपर के दो उदाहरणों में कर्त्ता में तृतीया है, और निन्दा में अधिकार्थवचनता है । तथा पिछले दो उदाहरणों में करण में तृतीया है, और प्रशंसा में अधिकार्थवचनता है, ऐसा समझना चाहिये ॥

अन्नेन व्यञ्जनम् ॥२।१।३३॥

अन्नेन ३।१॥ व्यञ्जनम् १।१॥ अनु०—तृतीया, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—व्यञ्जनवाचि तृतीयान्तं सुबन्तं अन्नवाचिना समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ उदा०—दध्ना उपसिक्त ओदनः =दध्योदनः; क्षीरौदनः ॥

भाषार्थः—[व्यञ्जनम्] व्यञ्जनवाची तृतीयान्त सुबन्त [अन्नेन] अन्नवाची

---

१. वस्तुतः इतने थोड़े जलवाली नदी हो ही नहीं सकती, जिसे कौए ही पी जायें । यहाँ ऐसा कहना ही अधिकार्थवचनता है । इसी प्रकार और उदाहरणों में भी समझें ।

समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समास को प्राप्त होता है, और वह तत्पुरुष समास होता है ॥

उदा०—दध्ना उपसिक्त ओदनः=दध्योदनः (दही मिला हुआ चावल); क्षीरौदनः ॥ दध्योदनः में यणादेश, तथा क्षीरौदनः में वृद्धिरेचि (६।१।८५) से वृद्धि एकादेश हुआ है ॥

तृतीया तत्पुरुष **भक्ष्येण मिश्रीकरणम् ॥२।१।३४॥**

भक्ष्येण ३।१॥ मिश्रीकरणम् १।१॥ अनु०—तृतीया, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—मिश्रीकरणवाची तृतीयान्तं सुबन्तं भक्ष्यवाचिना समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ उदा०—गुडेन मिश्रा धानाः=गुडधानाः; गुडपृथुकाः ॥

भाषार्थः—[मिश्रीकरणम्] मिश्रीकरणवाची तृतीयान्त सुबन्त [भक्ष्येण] भक्ष्यवाची समर्थ सुबन्त के साथ समास को प्राप्त होता है, और वह तत्पुरुष समास होता है ॥

उदा०—गुडेन मिश्रा धानाः=गुडधानाः (गुड़ मिले हुए धान=गुडधानी); गुडपृथुकाः (गुड से मिला हुआ च्यूड़ा=भक्ष्यविशेष) ॥

चतुर्थी तत्पुरुष **चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः ॥२।१।३५॥**

चतुर्थी १।१॥ तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः ३।३॥ स०—तस्मै इदम् तदर्थम्, चतुर्थीतत्पुरुषः । तदर्थं च अर्थश्च बलिश्च हितञ्च सुखञ्च रक्षितञ्च तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितानि, तैः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—चतुर्थ्यन्तं सुबन्तं तदर्थ, अर्थ, बलि, हित, सुख, रक्षित इत्येतैः समर्थैः सुबन्तैः सह विकल्पेन समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ 'तद्' इति पदेन चतुर्थ्यन्तस्यार्थः परामृश्यते । तदर्थेन प्रकृतिविकारभावे समास इष्यते॥ उदा०—तदर्थ—यूपाय दारु=यूपदारु; कुण्डलाय हिरण्यम्=कुण्डलहिरण्यम् । अर्थ[1]—ब्राह्मणार्थो पयः, ब्राह्मणार्था यवागूः । बलि—इन्द्राय बलिः=इन्द्रबलिः, कुबेरबलिः । हित—गोभ्यो हितं=गोहितम् । सुख—गोभ्यः सुखं=गोसुखम्; अश्वसुखम् । रक्षित—पुत्राय रक्षितम्=पुत्ररक्षितम्; अश्वरक्षितम् ॥

भाषार्थः—[चतुर्थी] चतुर्थ्यन्त सुबन्त [तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः] तदर्थ

१—'अर्थ' शब्द के साथ नित्यसमास वार्तिक (२।१।३५) से कहा है, अतः 'ब्राह्मणार्थो' का विग्रह नहीं दिखाया है ॥

तथा अर्थ बलि हित सुख रक्षित इन समर्थ सुबन्तों के साथ विकल्प से समास को प्राप्त होता है, और वह तत्पुरुष समास होता है ॥

उदा०—तदर्थ (यहां विकार का प्रकृति के साथ समास इष्ट है)—यूपाय दारु=यूपदारु (खम्भे के लिए जो लकड़ी), कुण्डलाय हिरण्यम्=कुण्डलहिरण्यम् (कुण्डल के लिए जो सोना)। अर्थ—ब्राह्मणार्थं पयः (ब्राह्मण के लिये दूध), ब्राह्मणार्था यवागूः (ब्राह्मण के लिये लप्सी)। बलि—इन्द्राय बलिः=इन्द्रबलिः (इन्द्र देवता के लिये जो बलि), कुबेरबलिः। हित—गोभ्यो हितं=गोहितम् (गायों के लिये जो हित)। सुख—गोभ्यः सुखं=गोसुखम् (गायों के लिये जो सुख), अश्वसुखम्। रक्षित—पुत्राय रक्षितम्=पुत्ररक्षितम् (पुत्र के लिये रक्षित), अश्वरक्षितम्।

पञ्चमी भयेन ॥२।१।३६॥

पञ्चमी १।१॥ भयेन ३।१॥ अनु०—तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—पञ्चम्यन्तं सुबन्तं भयशब्देन समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यते,तत्पुरुषश्च समासो भवति॥ उदा०—वृकेभ्यो भयम्=वृकभयम्, चौरभयम् ॥

भाषार्थः—[पञ्चमी] पञ्चम्यन्त सुबन्त समर्थ [भयेन] भयशब्द सुबन्त के साथ विकल्प से समास को प्राप्त होता है, और वह तत्पुरुष समास होता है ॥ उदा०—वृकेभ्यो भयम्=वृकभयम् (भेड़ियों से भय), चौरभयम् ॥

यहाँ से 'पञ्चमी' की अनुवृत्ति २।१।३८ तक जायेगी ॥

अपेतापोढमुक्तपतितापत्रस्तैरल्पशः ॥२।१।३७॥

अपेतापोढमुक्तपतितापत्रस्तै ३।३॥ अल्पशः अ० ॥ स०—अपेतापोढ० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनुः—पञ्चमी, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—अल्पं पञ्चम्यन्तं सुबन्तम् अपेत, अपोढ, मुक्त, पतित, अपत्रस्त इत्येतैः समर्थैः सुबन्तैः सह विकल्पेन समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ उदा०—दुःखाद् अपेतः=दुःखापेतः, सुखापेतः। धनाद् अपोढः=धनापोढः। दुःखाद् मुक्तः=दुःखमुक्तः। स्वर्गात् पतितः=स्वर्गपतितः। तरङ्गाद् अपत्रस्तः=तरङ्गापत्रस्तः ॥

भाषार्थः—[अल्पशः] अल्प पञ्चम्यन्त सुबन्त [अपेतापोढमुक्तपतितापत्रस्तैः] अपेत, अपोढ, मुक्त, पतित, अपत्रस्त इन समर्थ सुबन्तों के साथ विकल्प से समास को प्राप्त होता है, और वह तत्पुरुष समास होता है ॥ सूत्र में 'अल्पशः' कहने का अभिप्राय यह है कि=अल्प थोड़े ही पञ्चम्यन्त सुबन्तों का समास होता है, सब पञ्चम्यन्तों का नहीं। यथा प्रासादात् पतितः इस पञ्चम्यन्त का समास नहीं होता है ॥

उदा०—दुःखापेतः (दुःख से दूर), सुखापेतः। धनापोढः (धन से बाधित)।

दुःखमुक्तः (दुःख से छूट गया) । स्वर्गपतितः (स्वर्ग से गिरा हुआ) । तरङ्गापत्रस्तः (तरङ्गों से फेंका हुआ) ॥

पञ्चमी तत्पुरुष

स्तोक-अन्तिक दूर

स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन ॥२।१।३८॥

स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि १।३॥ क्तेन ३।१॥ स०—स्तोकश्च अन्तिकश्च दूरश्चेति स्तोकान्तिकदूराः, तेऽर्थाः येषां ते स्तोकान्तिकदूरार्थाः, स्तोकान्तिकदूरार्थाश्च कृच्छ्रञ्च तानि स्तो···कृच्छ्राणि,बहुव्रीहिगर्भेतरेतरयोगद्वन्द्वः॥ अनु०–पञ्चमी,तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—स्तोक, अन्तिक, दूर इत्येवमर्थाः शब्दाः कृच्छ्रशब्दश्च पञ्चम्यन्ताः क्तान्तेन समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ उदा०—स्तोकाद् मुक्तः=स्तोकान्मुक्तः; अल्पान्मुक्तः । अन्तिकाद् आगतः=अन्तिकादागतः, अभ्याशादागतः । दूराद् आगतः=दूरादागतः, विप्रकृष्टादागतः । कृच्छ्राद् मुक्तः=कृच्छ्रान्मुक्तः; कृच्छ्राद् लब्धः=कृच्छ्राल्लब्धः ॥

भाषार्थः—[स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि] स्तोक अन्तिक और दूर अर्थवाले पञ्चम्यन्त सुबन्त,तथा कृच्छ्र शब्द जो पञ्चम्यन्त सुबन्त, उनका समर्थ क्तान्त सुबन्त के साथ विकल्प से समास होता है, और वह तत्पुरुष समास होता है ॥ समासपक्ष में सुपो धातु० (२।४।७१) से जो पञ्चमी का लुक् प्राप्त था, उसका पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः (६।३।२) से अलुक् अर्थात् लुक् नहीं हुआ । समास होने से यही लाभ हुआ कि एकपद तथा एकस्वर हो गया ॥ स्तोकान्मुक्तः, में द् को न् यरोऽनुनासिके० (८।४।४४) से हुआ है । दूरादागतः, में त् को द् झलां जशोऽन्ते (८।२।३९) से हो गया है ॥

उदा०—स्तोकान्मुक्तः (थोड़े से ही छूट गया), अल्पान्मुक्तः । अन्तिकादागतः (समीप से आया हुआ), अभ्याशादागतः (पास से आया हुआ) । दूरादागतः (दूर से आया), विप्रकृष्टादागतः । कृच्छ्रान्मुक्तः (थोड़े से छूट गया), कृच्छ्राल्लब्धः ॥

सप्तमी तत्पुरुष

सप्तमी शौण्डैः ॥२।१।३९॥

सप्तमी १।१॥ शौण्डैः ३।३॥ अनु०—तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—सप्तम्यन्तं सुबन्तं शौण्डादिभिः समर्थैः सुबन्तैः सह विकल्पेन समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ उदा०—अक्षेषु शौण्डः=अक्षशौण्डः । अक्षधूर्त्तः । अक्षकितवः ॥

भाषार्थः—[सप्तमी] सप्तम्यन्त सुबन्त [शौण्डैः] शौण्ड इत्यादि समर्थ सुबन्तों के साथ विकल्प से समास को प्राप्त होता है, और वह तत्पुरुष समास होता है ॥ शौण्ड में बहुवचन निर्देश होने से यहां शौण्डादिगण लिया गया है ॥

उदा०—**अक्षशौण्डः (द्यूत-क्रीडा में चतुर)। अक्षधूर्तः। अक्षकितवः॥**

यहाँ से 'सप्तमी' **की अनुवृत्ति** २।१।४७ **तक जायेगी॥**

सिद्धशुष्कपक्वबन्धैश्च ॥२।१।४०॥

सिद्धशुष्कपक्वबन्धैः३।३॥ च अ०॥ स०—सिद्धशुष्क० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः॥ **अनु**०—सप्तमी, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः॥ **अर्थः**—सिद्ध शुष्क पक्व बन्ध इत्येतैः समर्थैः सुबन्तैः सह सप्तम्यन्तं सुबन्तं विकल्पेन समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति॥ **उदा०**—ग्रामे सिद्धः=ग्रामसिद्धः, नगरसिद्धः। आतपे शुष्कः=आतपशुष्कः, छायायां शुष्कः=छायाशुष्कः। स्थाल्यां पक्वः=स्थालीपक्वः। यूपे बन्धः=यूपबन्धः, चक्रबन्धः॥

भाषार्थः—[सिद्धशुष्कपक्वबन्धैः] **सिद्ध, शुष्क, पक्व, बन्ध इन समर्थ सुबन्तों के साथ [च] भी सप्तम्यन्त सुबन्त का विकल्प से समास होता है, और वह तत्पुरुष समास होता है॥**

उदा०—**ग्रामसिद्धः (ग्राम में बना), नगरसिद्धः। आतपशुष्कः (धूप में सूखा हुआ), छायाशुष्कः। स्थालीपक्वः (बटलोई में पकाया हुआ)। यूपबन्धः (यज्ञ के खम्भे में बाँधा हुआ), चक्रबन्धः (चक्र में बाँधा हुआ)॥**

ध्वाङ्क्षेण क्षेपे ॥२।१।४१॥

ध्वाङ्क्षेण ३।१॥ क्षेपे ७।१॥ **अनु**०—सप्तमी, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः॥ **अर्थः**—सप्तम्यन्तं सुबन्तं ध्वाङ्क्षवाचिना समर्थेन सुबन्तेन सह क्षेपे गम्यमाने विभाषा समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति॥ **उदा०**—तीर्थे ध्वाङ्क्ष इव=तीर्थध्वाङ्क्षः, तीर्थे काक इव=तीर्थकाकः, तीर्थवायसः॥

भाषार्थः—**सप्तम्यन्त सुबन्त** [ध्वाङ्क्षेण] **ध्वाङ्क्ष=(कौआ)वाची समर्थ सुबन्त के साथ** [क्षेपे] **क्षेप=निन्दा गम्यमान होने पर विकल्प से समास को प्राप्त होता है, और वह तत्पुरुष समास होता है॥**

उदा०—**तीर्थध्वाङ्क्षः (जैसे कौआ एक स्थान पर नहीं रह सकता, उसी प्रकार जो छात्र एक स्थान पर न पढ़कर यत्र-तत्र सर्वत्र पढ़ता फिरे, वह तीर्थध्वाङ्क्षः[1] कहलाता है), तीर्थकाकः, तीर्थवायसः॥**

कृत्यैर्ऋणे ॥२।१।४२॥

कृत्यैः ३।३॥ ऋणे ७।१॥ **अनु**०—सप्तमी, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः॥ **अर्थः**—सप्तम्यन्तं सुबन्तं कृत्यप्रत्ययान्तैः समर्थैः सुबन्तैः सह ऋणे गम्य-

१. विद्यार्थी का यत्र तत्र भागना ही यहाँ क्षेप है॥

माने विभाषा समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ।। उदा०—मासे देयम् ऋणं = मासदेयम् ऋणम् । संवत्सरदेयम्, त्र्यहदेयम् ।।

भाषार्थ:—सप्तम्यन्त सुबन्त [कृत्यैः] कृत्यप्रत्ययान्त समर्थ सुबन्तों के साथ [ऋणे] ऋण गम्यमान होने पर विकल्प से समास को प्राप्त होता है, और वह तत्पुरुष समास होता है ।।

उदा०—मासे देयम् ऋणं = मासदेयम् ऋणम् (महीने भर में चुका दिया जानेवाला ऋण) । संवत्सरदेयम्, त्र्यहदेयम् ।। देयम् में यत् प्रत्यय अचो यत् (३।१।९७ से हुआ है । सो कृत्याः (३।१।९५) से वह कृत्यसंज्ञक है ।।

सप्तमी तत्पुरुष संज्ञायाम् ।।२।१।४३।।

संज्ञायाम् ७।१।। अनु०—सप्तमी, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, समासः ।। अर्थः—सप्तम्यन्तं सुबन्तं संज्ञायां विषये समर्थेन सुबन्तेन सह समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ।। उदा०—अरण्येतिलकाः । अरण्येमाषाः । वनेकिंशुकाः । वनेबिल्वकाः । कूपेपिशाचकाः ।।

भाषार्थ:—सप्तम्यन्त सुबन्त [संज्ञायाम्] संज्ञा-विषय में समर्थ सुबन्तों के साथ समास को प्राप्त होता है, और वह तत्पुरुष समास होता है ।। यहाँ महाविभाषा का अधिकार आते हुये भी नित्य समास ही होता है । क्योंकि विग्रह-वाक्य से संज्ञा की प्रतीति ही नहीं होती है ।।

उदा०—अरण्येतिलकाः (जङ्गली तिल) । अरण्येमाषाः (जङ्गली उड़द) । वनेकिंशुकाः (जङ्गली टेसू के फूल) । वनेबिल्वकाः (पूर्ववत् ही अर्थ जानें) । कूपेपिशाचकाः (यहाँ भी पूर्ववत् जानें) ।। सर्वत्र उदाहरणों में हलदन्तात् सप्तम्याः० (६।३।७) से विभक्ति का अलुक् हुआ है ।।

सप्तमी तत्पुरुष क्तेनाहोरात्रावयवाः ।।२।१।४४।।

क्तेन ३।१।। अहोरात्रावयवाः १।३।। स०—अहश्च रात्रिश्च अहोरात्रौ, तयोरवयवाः अहोरात्रावयवाः, द्वन्द्वगर्भषष्ठीतत्पुरुषः ।। अनु०—सप्तमी, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ।। अर्थः—सप्तम्यन्ताः अहरवयववाचिनः राज्यवयववाचिनश्च शब्दाः क्तप्रत्ययान्तेन समर्थेन सुबन्तेन सह विभाषा समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ।। उदा०—पूर्वाह्णे कृतम् = पूर्वाह्णकृतम्, मध्याह्नकृतम् । पूर्वरात्रे कृतम् = पूर्वरात्रकृतम्, मध्यरात्रकृतम् ।।

भाषार्थ:—[अहोरात्रावयवाः] दिन के अवयववाची एवं रात्रि के अवयववाची

सप्तम्यन्त सुबन्तों का [क्तेन] क्तान्त समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समास होता है, और वह समास तत्पुरुषसंज्ञक होता है ।।

उदा०—पूर्वाह्णे कृतम्=पूर्वाह्णकृतम् (दिन के पूर्व भाग में किया हुआ), मध्याह्नकृतम् । पूर्वरात्रे कृतम्=पूर्वरात्रकृतम् (रात्रि के पूर्व भाग में किया हुआ), मध्यरात्रकृतम् ।।

यहाँ से "क्तेन" की अनुवृत्ति २।१।४६ तक जाती है ।।

तत्र॥२।१।४५॥

तत्र अ० ।। अनु०—क्तेन, सप्तमी, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ।। अर्थ—'तत्र' इति सप्तम्यन्तं सुबन्तं क्तप्रत्ययान्तेन समर्थेन सुबन्तेन सह विभाषा समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ।। उदा०—तत्रभुक्तम् । तत्रपीतम् । तत्रकृतम् ।।

भाषार्थः—[तत्र] 'तत्र' इस सप्तम्यन्त शब्द का क्तप्रत्ययान्त समर्थ सुबन्त के साथ समास विकल्प से होता है, और वह समास तत्पुरुषसंज्ञक होता है ।। समास होने से एकपद एकस्वर हो जाता है । पक्ष में पृथक्-पृथक् पद भी रहते हैं ।।

उदा०—तत्रभुक्तम् (वहाँ खाया)। तत्रपीतम् (वहाँ पिया)। तत्र कृतम् ।।

क्षेपे ॥२।१।४६॥

क्षपे ७।१।। अनु०—क्तेन, सप्तमी, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः।। अर्थः—सप्तम्यन्तं सुबन्तं क्तान्तेन समर्थेन सुबन्तेन सह क्षेपे गम्यमाने विभाषा समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ।। उदा०—अवतप्तेनकुलस्थितं तव एतत् । प्रवाहेमूत्रितम् । भस्मनिहुतम् ।।

भाषार्थः—सप्तम्यन्त सुबन्त क्तान्त समर्थ सुबन्त के साथ [क्षेपे] क्षेप(निन्दा) गम्यमान होने पर समास को विकल्प से प्राप्त होता है,और वह तत्पुरुष समास होता है ।। उदा०—अवतप्तेनकुलस्थितं तव एतत् (तपी हुई भूमि में जिस प्रकार नेवला अस्थिर होकर इधर-उधर भागता है, क्षणभर नहीं ठहरता, उसी प्रकार तुम्हारा कार्य है, अर्थात् अत्यन्त चञ्चल हैं) । प्रवाहेमूत्रितम् (बहते पानी में मूत्र करने के समान तुम्हारा किया काम है, अर्थात् निष्फल है) । भस्मनिहुतम् (भस्म में=राख में आहुति डालने के समान तुम्हारा काम निष्फल है) ।।

तत्पुरुषे कृति बहुलम् (६।३।१२) से अवतप्ते इत्यादियों में सप्तमी का अलुक्

हुआ है। नकुलस्थितं इत्यादि क्तान्त शब्द हैं। अत्यन्त चञ्चलता आदि ही यहाँ क्षेप है। कार्यों को आरम्भ करके जो धैर्य से उसे पूरा न कर इधर-उधर भागे, उसके लिये यह कहा है ।।

यहाँ से 'क्षेपे' की अनुवृत्ति २।१।४७ तक जायेगी ।।

पात्रेसंमितादयश्च ।।२।१।४७।।

पात्रेसंमितादयः १।३।। च अ० ।। स०—पात्रेसंमित आदिर्येषां ते पात्रेसंमितादयः, बहुव्रीहिः ।। अनु:—क्षेपे, सप्तमी, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, समासः ।। अर्थः—पात्रेसंमिताः इत्यादयः शब्दाः क्षेपे गम्यमाने समुदाया एव निपात्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ।। उदा—पात्रेसंमिताः । पात्रेबहुलाः ।।

भाषार्थः—[पात्रेसंमितादयः] पात्रेसंमित इत्यादि शब्द [च] भी क्षेप गम्यमान होने पर समुदायरूप से, अर्थात् जैसे गण में पठित हैं, उसी प्रकार निपातन किये जाते हैं, और तत्पुरुषसंज्ञक होते हैं ।। चकार यहाँ अवधारण के लिए है ।।

उदा०—पात्रेसंमिताः (भोजन के समय में ही जो इकट्ठे हो जावें, किसी कार्य के समय नहीं) । पात्रेबहुलाः (भोजनकाल में ही जो आवें, किसी कार्य में नहीं) ।।

पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन ।।२।१।४८।।

पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः १।३।। समानाधिकरणेन ३।१।। स०—पूर्वकाल० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः । समानमधिकरणं यस्य स समानाधिकरणः, तस्मिन्, बहुव्रीहिः ।। अनु०—तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ।। अर्थः—पूर्वकाल, एक, सर्व, जरत्, पुराण, नव, केवल इत्येते सुबन्ता समानाधिकरणेन सुबन्तेन सह विभाषा समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ।। उदा०—स्नातश्चानुभुक्तश्च=स्नातानुभुक्तः, कृष्टसमीकृतम् । एकश्चासौ वैद्यश्च=एकवैद्यः, एकभिक्षा । सर्वे च ते मनुष्याः=सर्वमनुष्याः, सर्वदेवाः । जरंश्चासौ हस्ती च=जरद्धस्ती, जरदश्वः । पुराणं च तदन्नञ्च=पुराणान्नम्, पुराणावसथम् । नवञ्च तदन्नं च=नवान्नम्, नवावसथम् । केवलञ्च तदन्नं च=केवलान्नम् ।।

भाषार्थः—[पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः] पूर्वकाल, एक, सर्व, जरत्, पुराण, नव, केवल इन सुबन्तों का [समानाधिकरणेन] समानाधिकरण सुबन्त के साथ विकल्प से समास होता है, और वह तत्पुरुष समास होता है ।। समानाधिकरण की व्याख्या १।२।४२ में कर आये हैं ।। यह सूत्र विशेषणं० (२।१।५६) का अपवाद है।।

उदा०—स्नातश्चानुभुक्तश्च=स्नातानुभुक्तः (पहले स्नान किया, पीछे खाया),

कृष्टसमीकृतम् (पहले खेत को जोता, पीछे बराबर किया)। एकश्चासौ वैद्यश्च = एकवैद्यः (एक ही है, और वही वैद्य है), एकभिक्षा । सर्वे च ते मनुष्याः = सर्वमनुष्याः (सब मनुष्य), सर्वदेवाः । जरंश्चासौ हस्ती च = जरद्धस्ती (बूढ़ा हाथी), जरदश्वः । पुराणं च तदन्नं च = पुराणान्नम् (पुराना अन्न), पुराणावसथम् (पुराना गृह) । नवञ्च तदन्नं च = नवान्नम् (नया अन्न), नवावसथम् । केवलञ्च तदन्नं च = केवलान्नम् (केवल अन्न) ।। जरद्धस्ती में ह् को घ् झयो होऽन्यतरस्याम् (८।४।६१) से हुआ है ।।

यहाँ से 'समानाधिकरणेन' की अनुवृत्ति पाद के अन्त २।१।७१ तक जाती है ।।

दिक्सङ्ख्ये संज्ञायाम् ।।२।१।४९।।

दिक्सङ्ख्ये १।२।। संज्ञायाम् ७।१।। स०—दिक् च सङ्ख्या च दिक्सङ्ख्ये, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ।। अनु०—समानाधिकरणेन, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, समासः ।। अर्थः—दिग्वाचिनः सङ्ख्यावाचिनश्च सुबन्ताः समानाधिकरणेन समर्थेन सुबन्तेन सह संज्ञायां विषये समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ।। उदा०—पूर्वा चासौ इषुकामशमी च = पूर्वेषुकामशमी, अपरेषुकामशमी । सङ्ख्या—पञ्च च ते आम्राः = पञ्चाम्राः; सप्त च ते ऋषयः = सप्तर्षयः ।।

भाषार्थः—[दिक्सङ्ख्ये] दिशावाची और संङ्ख्यावाची जो सुबन्त वे समानाधिकरण समर्थ सुबन्त के साथ [संज्ञायाम्] संज्ञाविषय में समास को प्राप्त होते हैं, और वह समास तत्पुरुषसंज्ञक होता है ।।

उदा०—पूर्वा चासौ इषुकामशमी च = पूर्वेषुकामशमी (किसी ग्राम की संज्ञा है), अपरेषुकामशमी । संङ्ख्या—पञ्च च ते आम्राः = पञ्चाम्राः (ग्राम के पाँच वृक्ष = संज्ञाविशेष), सप्तर्षयः (सात ऋषि) ।। पूर्वेषुकामशमी में समानाधिकरण समास होने से तत्पुरुषः समा० (१।२।४२) से कर्मधारय संज्ञा होकर 'पूर्वा' को पुंवत् कर्मधारय० (६।३।४१) से पुंवद्भाव हुआ है । आद्गुणः (६।१।८४) से गुण एकादेश होकर पूर्वेषुकामशमी बना है ।।

यहाँ से 'दिक्सङ्ख्ये' की अनुवृत्ति २।१।५० तक जाती है ।।

तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च ।।२।१।५०।।

तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे ७।१।। च अ०।। स०—तद्धितस्यार्थस्तद्धितार्थः, षष्ठीतत्पुरुषः। तद्धितार्थश्च उत्तरपदञ्च समाहारश्च तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारम्, तस्मिन्, समाहारो

द्वन्द्वः ॥ अनु०—दिक्सङ्ख्ये, समानाधिकरणेन, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—तद्धितार्थे=तद्धितोत्पत्तिविषये उत्तरपदे च परतः समाहारे चाभिधेये, दिक्सङ्ख्ये सुबन्ते समर्थेन समानाधिकरणवाचिना सुबन्तेन सह विभाषा समस्येते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ उदा०—पूर्वस्यां शालायां भवः=पौर्वशालः. आपरशालः। संङ्ख्या—तद्धितार्थे—पञ्चानां नापितानाम् अपत्यम्=पाञ्चनापितिः; पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः=पञ्चकपालः ॥ दिक्—उत्तरपदे—पूर्वा शाला प्रिया यस्य=पूर्वशालाप्रियः। सङ्ख्या—उत्तरपदे—पञ्च गावो धनं यस्य स पञ्चगवधनः; पञ्चनावप्रियः ॥ समाहारे दिक्शब्दो नास्तीति नोदाह्रियते। सङ्ख्या—समाहारे—पञ्चानां पूलानां समाहारः=पञ्चपूली, दशपूली; पञ्चानां कुमारीणां समाहारः=पञ्चकुमारि, दशकुमारि; अष्टानाम् अध्यायानां समाहारः=अष्टाध्यायी ॥

भाषार्थः—[तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे] **तद्धितार्थ का विषय उपस्थित होने पर, उत्तरपद परे रहते, तथा समाहार वाच्य होने पर [च] भी दिशावाची तथा सङ्ख्यावाची सुबन्तों का समर्थ समानाधिकरणवाची सुबन्तों के साथ विकल्प से समास होता है, और वह तत्पुरुष समास होता है ॥**

सङ्ख्यापूर्वो द्विगुः ॥२।१।५१॥

सङ्ख्यापूर्वः १।१॥ द्विगुः १।१॥ स०—सङ्ख्या पूर्वा यस्मिन् स सङ्ख्यापूर्वः बहुव्रीहिः ॥ अर्थः तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे इत्यत्र सङ्ख्यापूर्वो यः समासः स द्विगुसंज्ञको भवति ॥ पूर्वसूत्रस्यायं शेषः॥ उदा०—अत्र पूर्वसूत्रस्यैवोदाहरणानि बोद्धव्यानि। अन्यच्च - पञ्चेन्द्राण्यो देवता अस्य स्थालीपाकस्य=पञ्चेन्द्रः, दशेन्द्रः ॥

भाषार्थः—**तद्धितार्थोत्तरपदसमाहार में जो** [सङ्ख्यापूर्वः] **सङ्ख्यापूर्व समास है, वह** [द्विगुः] **द्विगुसंज्ञक होता है ॥ यह सूत्र पूर्वसूत्र का शेष है ॥ पञ्चेन्द्रः की सिद्धि हम परि० १।२।४९ पर दिखा चुके हैं, शेष उदाहरण पूर्वसूत्र के ही हैं ॥**

कुत्सितानि कुत्सनैः ॥२।१।५२॥

कुत्सितानि १।३॥ कुत्सनैः ३।३॥ अनु०—समानाधिकरणेन, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—कुत्सितवाचीनि सुबन्तानि कुत्सनवचनैः समानाधिकरणैः सुबन्तैः सह विभाषा समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ उदा०—वैयाकरणश्चासौ खसूचिश्च=वैयाकरणखसूचिः। याज्ञिककितवः। मीमांसकदुर्दुरूढः ॥

भाषार्थः—[कुत्सितानि] **कुत्सितवाची (निन्द्यवाची) सुबन्त** [कुत्सनैः] **कुत्सनवाची (निन्दावाची) समानाधिकरण सुबन्तों के साथ विकल्प करके समास को प्राप्त होते हैं, और वह समास तत्पुरुषसंज्ञक होता है ॥**

यहाँ से पहले-पहले के सब सूत्र विशेषणं विशेष्येण बहुलम् (२।१।५६) के अपवाद है। उस सूत्र से समास करते,तो "खसूचिः" आदि के विशेषणवाची उपसर्जन-संज्ञक होने से उनका पूर्वनिपात होता। यहाँ परनिपात हो गया, यही पृथक् सूत्र बनाने का प्रयोजन है। ऐसा सर्वत्र इन सूत्रों में जानना चाहिये॥

उदा०—वैयाकरणखसूचिः (आकाश की ओर देखनेवाला वैयाकरण, अर्थात् ऐसा वैयाकरण जो कि व्याकरण की बात पूछने पर आकाश की ओर देखने लगे, बता न सके)। याज्ञिककितवः (ऐसा याज्ञिक जो यज्ञ के अनधिकारियों के यहाँ भी यज्ञ कराये)। मीमांसकदुर्दुरूढः (नास्तिक मीमांसक)॥

यहाँ से 'कुत्सनैः' की अनुवृत्ति २।१।५३ तक जाती है॥

पापाणके कुत्सितैः ॥२।१।५३॥

पापाणके १।२॥ कुत्सितैः ३।३॥ स०—पापञ्च अणकञ्च पापाणके, इतरेतरयोगद्वन्द्वः॥ अनु०—कुत्सनैः, समानाधिकरणेन, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः॥ अर्थः—पाप अणक इत्येतौ कुत्सनवाचिनौ सुबन्तौ कुत्सितवाचिभिः समानाधिकरणैः सुबन्तैः सह विभाषा समस्येते, तत्पुरुषश्च समासो भवति॥ पूर्वसूत्रस्यापवादोऽयम्॥ उदा०—पापश्चासौ नापितश्च=पापनापितः, पापकुलालः। अणकनापितः, अणककुलालः॥

भाषार्थः—[पापाणके] पाप और अणक जो कुत्सनवाची सुबन्त, वे समानाधिकरण [कुत्सितैः] कुत्सितवाची सुबन्तों के साथ विकल्प से समास को प्राप्त होते हैं, और वह तत्पुरुष समास होता है॥ यह सूत्र पूर्वसूत्र का अपवाद है। कुत्सनवाची पाप अणक शब्द थे ही, सो समास पूर्वसूत्र से हो ही जाता, पुनः आरम्भ पूर्वनिपातार्थ है॥ उदा०—पापनापितः (पापी नाई), पापकुलालः। अणकनापितः (निन्दित नाई), अणककुलालः (निन्दित कुम्हार)॥

उपमानानि सामान्यवचनैः ॥२।१।५४॥

उपमानानि १।३॥ सामान्यवचनैः ३।३॥ स०—सामान्यम् उक्तवन्त इति सामान्यवचनाः,तैः, तत्पुरुषः॥ अनु०—समानाधिकरणेन, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः॥ अर्थः—उपमानवाचीनि सुबन्तानि समानाधिकरणैः सामान्यवचनैः सुबन्तैः सह विभाषा समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति॥ उपमीयते अनेन इति उपमानम्॥ उदा०—घन इव श्यामः=घनश्यामो देवदत्तः। शस्त्री इव श्यामा=शस्त्रीश्यामा देवदत्ता॥

भाषार्थः—[उपमानानि] उपमानवाची सुबन्त [सामान्यवचनैः] सामान्यवाची

समानाधिकरण सुबन्तों के साथ विकल्प से समास को प्राप्त होते हैं, और वह तत्पुरुष समास होता है ॥

जिस वस्तु से किसी की उपमा दी जाये,वह वस्तु उपमान होती है। तथा जिसकी दी जाय, वह उपमेय होता है । उदाहरणों में घन तथा शस्त्री उपमान, व देवदत्त तथा देवदत्ता उपमेय हैं ॥ जिस विशेष गुण को लेकर उपमेय में उपमान का साम्य दिखाया जाये,वह सामान्य=साधारण धर्म कहलाता है। यथा पूर्वोक्त एक उदाहरण में शस्त्री के श्यामत्व गुण का साम्य देवदत्ता में दिखाया है । श्यामत्व गुण से विशिष्ट श्यामा है, सो श्यामा सामान्यवचन है । अतः उसके साथ समास हुआ है ॥ जो शब्द उनकी समानता को बताये, वह तद्वाचक शब्द कहलाता है, जैसे—इव, यथा । ये ४ बातें उपमालङ्कार में होती हैं ॥

उदा०—घनश्यामो देवदत्तः (बादलों की तरह काला देवदत्त) । शस्त्रीश्यामा देवदत्ता (शस्त्री=आरी के समान जो काली देवदत्ता स्त्री) ॥

उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे ॥२।१।५५॥

समानाधिकरण तत्पुरुष

उपमितं १।१॥ व्याघ्रादिभिः ३।३॥ सामान्याप्रयोगे ७।१॥ स०—व्याघ्र आदिर्येषां ते व्याघ्रादयः, तैः, बहुव्रीहिः । न प्रयोगः अप्रयोगः, सामान्यस्य अप्रयोगः सामान्याप्रयोगः, तस्मिन्, षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—समानाधिकरणेन, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—सामान्यस्य=साधारणधर्मवाचिशब्दस्य अप्रयोगे=अनुच्चारणे सति, उपमितं=उपमेयवाचि सुबन्तं समानाधिकरणैः व्याघ्रादिभिः सुबन्तैः सह विभाषा समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ उदा०—पुरुषोऽयं व्याघ्र इव=पुरुषव्याघ्रः । पुरुषोऽयं सिंह इव=पुरुषसिंहः ॥

भाषार्थः—[सामान्याप्रयोगे] साधारणधर्मवाची शब्द के अप्रयोग=अनुच्चारण होने पर [उपमितम्] उपमेयवाची सुबन्त का समानाधिकरण [व्याघ्रादिभिः] व्याघ्रादि सुबन्तों के साथ विकल्प से समास होता है, और वह तत्पुरुष समास होता है ॥ पूर्वसूत्र का यह अपवादसूत्र पूर्वनिपातार्थ है ॥

उदा०—पुरुषव्याघ्रः (व्याघ्र के समान शूरवीर पुरुष); पुरुषसिंहः ॥ उदाहरण में पुरुष उपमेय,और व्याघ्र उपमान है। साधारणधर्म शूरता है,अर्थात् शूरत्व को लेकर उपमा दी गई । सो उसका यहाँ अप्रयोग है जहाँ प्रयोग होगा वहाँ समास नहीं होगा॥

विशेषणं विशेष्येण बहुलम् ॥२।१।५६॥

विशेषणं १।१॥ विशेष्येण ३।१॥ बहुलम् १।१॥ अनु०—समानाधिकरणेन, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—विशेषणवाचि सुबन्तं विशेष्यवाचिना

समानाधिकरणेन सुबन्तेन सह बहुलं समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ उदा०— नीलञ्च तदुत्पलञ्च = नीलोत्पलम् । रक्तोत्पलम् ॥ बहुलवचनात् क्वचित् नित्यसमास एव—कृष्णसर्पः, लोहितशालिः ॥

भाषार्थः— [विशेषणम्] विशेषणवाची सुबन्त [विशेष्येण] विशेष्यवाची समानाधिकरण सुबन्त के साथ [बहुलम्] बहुल करके समास को प्राप्त होता है, और वह तत्पुरुष समास होता है ॥ 'बहुल' की व्याख्या हम २।१।३१ में कर चुके हैं ॥ जो किसी की विशेषता को बताये, वह विशेषण अर्थात् भेदक होता है, तथा जिसकी विशेषता बताये वह विशेष्य होता है ॥

उदा०— नीलोत्पलम् (नीला कमल) । रक्तोत्पलम् (लाल कमल)। कृष्णसर्पः (काला साँप) । लोहितशालिः (लाल धान) ॥ उदाहरण में नील उत्पल की विशेषता को बताता है, अतः वह विशेषण है । तथा उत्पल विशेष्य है, सो समास हो गया है ॥

यहाँ से "विशेषणं विशेष्येण" की अनुवृत्ति २।१।५७ तक जाती है ॥

पूर्वापरप्रथमचरमजघन्यसमानमध्यमध्यमवीराश्च ॥२।१।५७॥

पूर्वापर···—वीराः १।३॥ च अ० ॥ स०—पूर्वापर० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—विशेषणं विशेष्येण, समानाधिकरणेन, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—पूर्व, अपर, प्रथम, चरम, जघन्य, समान, मध्य, मध्यम, वीर इत्येते विशेषणवाचिनः सुबन्ताः समानाधिकरणैः विशेष्यवाचिभिः सुबन्तैः सह विभाषा समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ उदा०—पूर्वश्चासौ पुरुषश्च = पूर्वपुरुषः । अपरपुरुषः । प्रथमपुरुषः । चरमपुरुषः । जघन्यपुरुषः । समानपुरुषः । मध्यपुरुषः । मध्यमपुरुषः । वीरपुरुषः ॥

भाषार्थः— [पूर्वापरप्रथमचरमजघन्यसमानमध्यमध्यमवीराः] पूर्व, अपर, प्रथम, चरम, जघन्य, समान, मध्य, मध्यम, वीर इन विशेषणवाची सुबन्तों का [च] भी विशेष्यवाची समानाधिकरण सुबन्तों के साथ विकल्प से समास होता है, और वह तत्पुरुष समास होता है ॥ पूर्वसूत्र से ही समास सिद्ध था, पुनः यह सूत्र प्रपञ्चार्थ है ॥

उदा०—पूर्वपुरुषः (पहला पुरुष) । अपरपुरुषः (दूसरा पुरुष) । प्रथमपुरुषः । चरमपुरुषः (अन्तिम पुरुष) । जघन्यपुरुषः (क्रूर पुरुष)। समानपुरुषः (समान पुरुष) । मध्यपुरुषः (बीच का आदमी)। मध्यमपुरुषः । वीरपुरुषः (वीर पुरुष) ॥

समानाधिकरण तत्पुरुष **श्रेण्यादयः कृतादिभिः ॥२।१।५८॥**

श्रेण्यादयः १।३॥ कृतादिभिः ३।३॥ स०—श्रेणिः आदिर्येषां ते श्रेण्यादयः, बहुव्रीहिः। कृत आदिर्येषां ते कृतादयः, तैः, बहुव्रीहिः ॥ **अनु०**—समानाधिकरणेन, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ **अर्थः**—श्रेण्यादयः सुबन्ताः समानाधिकरणैः कृतादिभिः सह विभाषा समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ **उदा०**—अश्रेणयः श्रेणयः कृताः=श्रेणिकृताः। एककृताः ॥

भाषार्थः—[श्रेण्यादयः] **श्रेण्यादि सुबन्त [कृतादिभिः] कृतादि समानाधिकरण सुबन्तों के साथ विकल्प से समास को प्राप्त होते हैं, और वह समास तत्पुरुषसंज्ञक होता है।। उदा०—श्रेणिकृताः (जो पंक्ति में नहीं थे, उन्हें पंक्ति में किया)। एककृता (जो एक नहीं थे, उनको एक किया गया)॥**

समानाधिकरण तत्पुरुष

क्तेन नञ्विशिष्टेनानञ् ॥२।१।५९॥

क्तेन ३।१॥ नञ्विशिष्टेन ३।१॥ अनञ् १।१॥ स०—नञा एव विशिष्टः नञ्विशिष्टः, तेन, बहुव्रीहिः। न विद्यते नञ् यस्मिन् सोऽनञ्, बहुव्रीहिः ॥ **अनु०**—समानाधिकरणेन, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ **अर्थः**—अनञ् क्तान्तं सुबन्तं नञ्विशिष्टेन क्तान्तेन समानाधिकरणेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ **उदा०**—कृतं च तदकृतं च=कृताकृतम्। भुक्ताभुक्तम्। पीतापीतम् ॥

भाषार्थः—[अनञ्] **अनञक्तान्त सुबन्त [नञ्विशिष्टेन] नञ्विशिष्ट (अर्थात् जिस शब्द में नञ् ही विशेष हो, अन्य सब प्रकृतिप्रत्यय आदि द्वितीय पद के तुल्य हों) समानाधिकरण [क्तेन] क्तान्त सुबन्त के साथ विकल्प से समास को प्राप्त होता है, और वह तत्पुरुष समास होता है ॥**

उदा०—**कृताकृतम् (जो किया न किया बराबर हो)। भुक्ताभुक्तम् (जो खाया न खाया एक हो)। पीतापीतम् ॥ उदाहरण 'कृताकृतम्' आदि में पूर्वपद नञ्-रहित, तथा उत्तरपद नञ्विशिष्ट है। उत्तरपद में पूर्वपद से केवल नञ् ही विशेष है, अन्य सब प्रकृति प्रत्ययादि तुल्य हैं ॥** समानाधिकरण तत्पुरुष

सत् महत् परम उत्तम उत्कृष्ट **सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः ॥२।१।६०॥**

सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः १।३॥ पूज्यमानैः ३।३॥ स०—सत् च महत् च परमश्च उत्तमश्च उत्कृष्टश्च सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ **अनु०**—समानाधिकरणेन, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ **अर्थः**—सत्, महत्,

परम, उत्तम, उत्कृष्ट इत्येते सुबन्ताः समानाधिकरणैः पूज्यमानैः सुबन्तैः सह विभाषा समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ।। उदा०—सन् चासौ पुरुषश्च=सत्पुरुषः । महापुरुषः । परमपुरुषः । उत्तमपुरुषः । उत्कृष्टपुरुषः ।।

भाषार्थः—[सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः] **सत्, महत्, परम, उत्तम, उत्कृष्ट सुबन्त समानाधिकरण** [पूज्यमानैः] **पूज्यमानवाची (पूजा के योग्य) सुबन्तों के साथ विकल्प से समास को प्राप्त होते हैं, और वह समास तत्पुरुषसंज्ञक होता है ।। ये सब सूत्र २।१।५६ के प्रपञ्च हैं ।।**

उदा०—**सत्पुरुषः (सज्जन पुरुष) । महापुरुषः । परमपुरुषः (परम पुरुष) । उत्तमपुरुषः । उत्कृष्टपुरुषः (अच्छा पुरुष) ।। महापुरुषः में महत् को** आन्महतः समानाधिकरण० **(६।३।४४) से आत्व होता है, जो कि** अलोन्त्यस्य **(१।१।५१) से अन्त्य अल् के त् को हुआ है ।।**

वृन्दारकनागकुञ्जरैः पूज्यमानम् ।।२।१।६१।।

वृन्दारकनागकुञ्जरैः ३।३।। पूज्यमानम् १।१।। **स०**—वृन्दारकश्च नागश्च कुञ्जरश्च वृन्दारकनागकुञ्जराः, तैः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ।। **अनु०**—समानाधिकरणेन, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ।। **अर्थः**—पूज्यमानवाचि सुबन्तं वृन्दारक नाग कुञ्जर इत्येतैः समानाधिकरणैः सुबन्तैः सह विभाषा समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ।। **उदा०**—गौश्चासौ वृन्दारकश्च=गोवृन्दारकः, अश्ववृन्दारकः । गोनागः, अश्वनागः । गोकुञ्जरः, अश्वकुञ्जरः ।।

भाषार्थः—[पूज्यमानम्] **पूज्यमानवाची सुबन्त** [वृन्दारकनागकुञ्जरैः] **वृन्दारक नाग कुञ्जर इन समानाधिकरणवाची सुबन्तों के साथ विकल्प से समास को प्राप्त होता है, और वह तत्पुरुष समास होता है ।। गो अश्व पूज्यमानवाची थे, सो समास होकर** उपसर्जनं पूर्वम् **(२।२।३०) से इनका पूर्व निपात हुआ है ।।**

उदा०—**गोवृन्दारकः (उत्तम बैल), अश्ववृन्दारकः । गोनागः (उत्तम बैल), अश्वनागः । गोकुञ्जरः (उत्तम बैल), अश्वकुञ्जरः ।।**

कतरकतमौ जातिपरिप्रश्ने ।।२।१।६२।।

कतरकतमौ १।२।। जातिपरिप्रश्ने ७।१।। **स०**—कतरश्च कतमश्च कतरकतमौ, इतरेतरयोगद्वन्द्वः । जातेः परितः प्रश्नः, जातिपरिप्रश्नः, षष्ठीतत्पुरुषः ।। **अनु०**—समानाधिकरणेन, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ।। **अर्थः**—जातिपरिप्रश्नेऽर्थे वर्त्तमानौ कतर-कतमशब्दौ समर्थेन समानाधिकरणेन सुबन्तेन सह विभाषा

समस्येते तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ उदा०—कतरः कठः=कतरकठः, कतर-कलापः । कतमकठः, कतमकलापः ॥

भाषार्थः—[जातिपरिप्रश्ने] जातिपरिप्रश्न, अर्थात् जाति के विषय में विविध प्रश्न में वर्त्तमान जो [कतरकतमौ] कतर कतम शब्द, वे समानाधिकरणवाची समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समास को प्राप्त होते हैं, और वह तत्पुरुष समास होता है॥

उदा०—कतरकठः (इन दोनों में कौन कठ है), कतरकलापः । कतमकठः (इन सब में कौन कठ है), कतमकलापः ॥

किं क्षेपे ॥२।१।६३॥

किम् १।१॥ क्षेपे ७।१॥ अनु०—समानाधिकरणेन, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—किम् इत्येतत् सुबन्तं क्षेपे गम्यमाने समानाधिकरणेन सुबन्तेन सह विभाषा समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ उदा०—कथंभूतः सखा =किंसखा योऽभिद्रुह्यति, किंराजा यो न रक्षति ॥

भाषार्थः—[किम्] किं सुबन्त का [क्षेपे] निन्दा गम्यमान होने पर समानाधिकरणवाची समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समास होता है, और वह तत्पुरुष समास होता है ॥

उदा०—किंसखा यो अभिद्रुह्यति (वह कैसा मित्र है अर्थात् मित्र नहीं है, जो द्रोह करता है), किंराजा यो न रक्षति (वह कैसा राजा है, जो प्रजा की रक्षा नहीं करता) ॥

पोटायुवतिस्तोककतिपयगृष्टिधेनुवशावेहद्बष्कयणीप्रवक्तृश्रोत्रियाध्यापकधूर्त्तैर्जातिः ॥२।१।६४॥

पोटायुवति० धूर्तैः ३।३॥ जातिः १।१॥ स०—पोटा च युवतिश्च स्तोकश्च कतिपयं च गृष्टिश्च धेनुश्च वशा च वेहच्च बष्कयणी च प्रवक्ता च श्रोत्रियश्च अध्यापकश्च धूर्तश्च पोटा···धूर्ताः, तैः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—समानाधिकरणेन, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—पोटा, युवति, स्तोक, कतिपय, गृष्टि, धेनु, वशा, वेहद्, बष्कयणी, प्रवक्तृ, श्रोत्रिय, अध्यापक, धूर्त्त इत्येतैः समानाधिकरणैः सुबन्तैः सह जातिवाचि सुबन्तं विभाषा समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ उदा०—इभा चासौ पोटा च=इभपोटा । इभयुवतिः । अग्निस्तोकः । उदश्वित्कतिपयम् । गोगृष्टिः । गोधेनुः । गोवशा । गोवेहत् । गोबष्कयणी । कठ-प्रवक्ता । कठश्रोत्रियः । कठाध्यापकः । कठधूर्त्तः ॥

भाषार्थः—[जातिः] जातिवाची जो सुबन्त वह [पोटायुवति······धूर्तैः]

पोटा युवति आदि समानाधिकरण समर्थ सुबन्तों के साथ विकल्प से समास को प्राप्त होता है, और वह समास तत्पुरुषसंज्ञक होता है ॥ इभ, गो, कठ आदि जातिवाची सुबन्त हैं ॥ यहाँ पर जाति विशेष्य है, पोटादि शब्द विषशेण हैं, सो २।१।५६ से समास प्राप्त था। पुनर्वचन विशेष्यवाचियों का पूर्वनिपात (२।२।३०) हो, विशेषण-वाचियों का नहीं, इसलिये है ॥

उदा०—इभपोटा (वन्ध्याहथिनी)। इभयुवतिः (नौजवान हथिनी)। अग्नि-स्तोकः (थोड़ी अग्नि)। उदश्वित्कतिपयम् (कुछ मट्ठा)। गोगृष्टिः (एकबार प्रसूता गौ)। गोधेनुः (तत्काल ब्याई हुई गौ)। गोवशा (वन्ध्या गौ)। गोवेहत् (गर्भ-पातिनी गौ)। गोवष्कयणी (तरुण हैं बछड़े जिसके ऐसी गौ)। कठप्रवक्ता (कठ व्याख्याता)। कठश्रोत्रियः (कठ वेद पढ़नेवाला)। कठाध्यापकः (कठ अध्यापक)। कठधूर्त्तः (कठ धूर्त्त) ॥

यहाँ से 'जातिः' की अनुवृत्ति २।१।६५ तक जायेगी ॥

प्रशंसावचनैश्च ॥२।१।६५॥

प्रशंसावचनैः ३।३॥ च अ० ॥ अनु०—जातिः, समानाधिकरणेन, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—जातिवाचि सुबन्तं प्रशंसावचनैः समाना-धिकरणैः सुबन्तैः सह विभाषा समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ उदा०—ब्राह्मणश्चासौ तेजस्वी च=ब्राह्मणतेजस्वी। ब्राह्मणशूरः। गोप्रकाण्डम्। गोमत-ल्लिका। गोमर्चिका ॥

भाषार्थः—जातिवाची सुबन्त [प्रशंसावचनैः] प्रशंसावाची समानाधिकरण सुबन्तों के साथ [च] भी विकल्प से समास को प्राप्त होता है, और वह तत्पुरुष समास होता है ॥ प्रकाण्ड, मतल्लिका आदि प्रशंसावाची शब्द हैं ॥

युवा खलतिपलितवलिनजरतीभिः ॥२।१।६६॥

युवा १।१॥ खलतिपलितवलिनजरतीभिः ३।३॥ स०—खलतिश्च पलितश्च वलिनश्च जरती च खलति…जरत्यः, ताभिः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—समाना-धिकरणेन, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—युवशब्दः खलति, पलित, वलिन, जरती इत्येतैः समानाधिकरणैः सुबन्तैः सह समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ उदा०—युवा खलतिः=युवखलतिः। युवा पलितः=युवपलितः। युवा वलिनः=युववलिनः। युवतिः जरती=युवजरती ॥

भाषार्थः—[युवा] युवन् शब्द [खलतिपलितवलिनजरतीभिः] खलति, पलित, वलिन, जरती इन समानाधिकरण सुबन्तों के साथ विकल्प से समास को प्राप्त होता है, और वह तत्पुरुष समास होता है ॥

उदा०—युवखलतिः (नौजवान गञ्जा पुरुष)। युवपलितः (नौजवान सफेद बालोंवाला)। युववलिनः (नौजवान झुर्रीवाला)। युवजरती (नौजवानी में ही बूढ़ी हुई स्त्री) ॥ 'युवन् सु खलति सु, इस अवस्था में समास होकर नलोपः प्राति० (८।२।७) से युवन् के न् का लोप हो गया, शेष पूर्ववत् है ॥ स्त्रीलिङ्ग में 'युवति खलती' तथा 'युवति जरती' का समास होने पर १।२।४२ से कर्मधारय संज्ञा होकर, पुंवत् कर्मधारय० (६।३।४०) से पुंवद्भाव होकर युव रहा गया। शेष पूर्ववत् समझें ॥

कृत्यतुल्याख्या अजात्या ॥२।१।६७॥

कृत्यतुल्याख्याः १।३॥ अजात्या ३।१॥ स०—तुल्यमाचक्षत इति तुल्याख्याः, उपपदतत्पुरुषः। कृत्याश्च तुल्याख्याश्च कृत्यतुल्याख्याः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—समानाधिकरणेन, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—कृत्यप्रत्ययान्ताः तुल्यपर्यायाश्च सुबन्ता अजातिवाचिना समानाधिकरणेन सुबन्तेन सह विभाषा समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ उदा०—भोज्यं चादः उष्णञ्च=भोज्योष्णम्। भोज्यलवणम्। पानीयशीतम् ॥ तुल्याख्याः—तुल्यश्वेतः, तुल्यमहान्। सदृश्श्वेतः, सदृशमहान् ॥

भाषार्थः—[कृत्यतुल्याख्याः] कृत्यप्रत्ययान्त सुबन्त, तथा तुल्य के पर्यायवाची सुबन्त [अजात्या] अजातिवाची समानाधिकरण समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समास को प्राप्त होते हैं, और वह तत्पुरुष समास होता है ॥

उदा०—भोज्योष्णम् (खाने योग्य गर्म पदार्थ)। भोज्यलवणम् (भोजन योग्य नमकीन पदार्थ)। पानीयशीतम् (पीने योग्य शीतल पदार्थ) ॥ तुल्य की आख्यावाले—तुल्यश्वेतः (बराबर सफेद), तुल्यमहान् (बराबर महान्)। सदृशश्वेतः, सदृशमहान् ॥ भुजधातु से ण्यत् (३।१।१२४) प्रत्यय होकर भोज्य, तथा पा धातु से अनीयर् प्रत्यय होकर पानीय बना है। ये प्रत्यय कृत्याः (३।१।९५) से कृत्यसंज्ञक हैं। उष्ण लवणादि शब्द अजातिवाची हैं, सो पूर्ववत् समास हो गया है ॥

वर्णो वर्णेन ॥२।१।६८॥

वर्णः १।१॥ वर्णेन ३।१॥ अनु०—समानाधिकरणेन, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—वर्णविशेषवाचि सुबन्तं वर्णविशेषवाचिना समाना-

धिकरणेन सुबन्तेन सह विभाषा समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ।। उदा०—कृष्णश्चासौ सारङ्गश्च=कृष्णसारङ्गः । लोहितसारङ्गः। कृष्णशबलः। लोहितशबलः ।।

भाषार्थ:—[वर्णः] वर्णविशेषवाची सुबन्त [वर्णेन] वर्णविशेषवाची समानाधिकरण सुबन्त के साथ समास को विकल्प से प्राप्त होता है, और वह तत्पुरुष समास होता है ।।

उदा० --कृष्णसारङ्गः (काला और चितकबरा) । लोहितसारङ्गः (लाल और चितकबरा) । कृष्णशबलः (काला और चितकबरा) । लोहितशबलः ।।

कुमारः श्रमणादिभिः ।।२।१।६९।।

कुमार: १।१।। श्रमणादिभिः ३।३।। स०—श्रमणा आदिर्येषां ते श्रमणादयः,तैः, बहुव्रीहिः ।। अनु०—समानाधिकरणेन, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ।। अर्थः—कुमारशब्दः समानाधिकरणैः श्रमणादिभिः समर्थैः सुबन्तैः सह विभाषा समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ।। उदा०—कुमारी चासौ श्रमणा च=कुमारश्रमणा । कुमारप्रव्रजिता ।।

भाषार्थ:—[कुमारः] कुमार शब्द समानाधिकरण [श्रमणादिभिः] श्रमणादि समर्थ सुबन्तों के साथ विकल्प से समास को प्राप्त होता है, और वह तत्पुरुष समास होता है ।।

उदा०—कुमारश्रमणा (कुमारी तपस्विनी) । कुमारप्रव्रजिता (कुमारी संन्यासिनी)।। सूत्र २।१।६६ की सिद्धि के समान ही यहाँ भी पुंवद्भाव हुआ है ।।

चतुष्पादो गर्भिण्या ।।२।१।७०।।

चतुष्पादः १।३।। गर्भिण्या ३।१।। स०—चत्वारः पादा यासां ताः चतुष्पादः, बहुव्रीहिः ।। अनु०—समानाधिकरणेन, तत्पुरुषः विभाषा,सुप्, सह सुपा, समासः ।। अर्थः—चतुष्पाद्वाचिनः सुबन्ताः समानाधिकरणेन गर्भिणीशब्देन सुबन्तेन सह विभाषा समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ।। उदा०—गौश्चासौ गर्भिणी च=गोगर्भिणी । महिषगर्भिणी । अजगर्भिणी ।।

भाषार्थ:—[चतुष्पादः] चतुष्पादवाची (चार पैर हैं जिनके, पशु आदि) जो सुबन्त, वह समानाधिकरण [गर्भिण्या] गर्भिणी सुबन्त के साथ विकल्प से समास को प्राप्त होते हैं, और वह समास तत्पुरुषसंज्ञक होता है ।।

उदा०—गोगर्भिणी (गर्भिणी गाय) । महिषगर्भिणी (गर्भिणी भैंस) । अजगर्भिणी (गर्भिणी बकरी) ।।

मयूरव्यंसकादयश्च ॥२।१।७१॥

मयूरव्यंसकादयः १।३॥ च अ० ॥ **स०**—मयूरव्यंसक आदिर्येषां, ते मयूरव्यंसकादयः, बहुव्रीहिः ॥ **अनु०**—समानाधिकरणेन, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ **अर्थः**—मयूरव्यंसकादयो गणशब्दाः समानाधिकरणे तत्पुरुषसञ्ज्ञका भवन्ति, समुदाया एव निपात्यन्ते ॥ **उदा०**—मयूरव्यंसकः । छात्रव्यंसकः ॥

भाषार्थः—[मयूरव्यंसकादयः] **मयूरव्यंसकादि गणपठित समुदायरूप शब्द [च] भी समानाधिकरण तत्पुरुषसंज्ञक होते हैं ॥**

उदा०—**मयूरव्यंसकः (बहुत चालाक मोर)** । **छात्रव्यंसकः(चालाक विद्यार्थी)**॥

॥ इति प्रथमः पादः ॥

द्वितीयः पादः

पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे ॥२।२।१॥

पूर्वापराधरोत्तरम् १।१॥ एकदेशिना ३।१ एकाधिकरणे ७।१ (तृतीयार्थे सप्तमी) ॥ **स०**—पूर्वं च अपरं च अधरं च उत्तरं च पूर्वापराधरोत्तरम्, समाहारो द्वन्द्वः । एकं च तदधिकरणम् च एकाधिकरणम्, तस्मिन्, कर्मधारयस्तत्पुरुषः । एकदेशोऽस्यास्तीति एकदेशी,तेन एकदेशिना ॥ **अनु०**—तत्पुरुषः,विभाषा सुप्,सह सुपा, समासः ॥ **अर्थः**—पूर्व, अपर, अधर, उत्तर इत्येते सुबन्ताः एकाधिकरणवाचिना=एकद्रव्यवाचिना एकदेशिना समर्थेन सुबन्तेन सह विभाषा समस्यन्ते,तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ षष्ठीसमासापवादः ॥ **उदा०**—पूर्वं कायस्य=पूर्वकायः, नद्याः पूर्वं=पूर्वनदी । अपरं कायस्य=अपरकायः, वृक्षस्य अपरं=अपरवृक्षम् । कायस्य अधरं=अधरकायः, गृहस्य अधरं=अधरगृहम् । उत्तरं कायस्य=उत्तरकायः ॥

भाषार्थः—[पूर्वापराधरोत्तरम्] **पूर्व, अपर, अधर, उत्तर ये सुबन्त** [एकाधिकरणे] **एकाधिकरणवाची=एकद्रव्यवाची** [एकदेशिना] **एकदेशी (=अवयवी) समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समास को प्राप्त होते हैं, और वह समास तत्पुरुषसंज्ञक होता है ॥ एकदेश=अवयव जिसमें हो वह एकदेशी कहलाता है, अर्थात् समुदाय (=अवयवी) । अवयवी के एक द्रव्य होने पर ही समास होगा, अनेक द्रव्य होने पर नहीं । जैसे 'छात्राणां पूर्वम्' में अवयवी छात्र अनेक हैं, अतः समास नहीं होगा ॥**

उदा०—**पूर्वकायः (शरीर का पूर्वभाग), पूर्वनदी । अपरकायः (शरीर का अपर भाग), अपरवृक्षम् । अधरकायः (शरीर का निचला भाग), अधरगृहम् ।**

उत्तरकायः (शरीर का उत्तर भाग) ।। उदाहरणों में काय नदी इत्यादि एकदेशी हैं। क्योंकि उन्हीं का अवयव पूर्व उत्तर है, सो अवयववाले हैं। और एक अधिकरण (=द्रव्य) भी हैं अनेक नहीं ।। यह सूत्र षष्ठीसमास का अपवाद है। षष्ठीसमास होता, तो काय वा नदी का उपसर्जनं पूर्वम् (२।२।३०) से पूर्वनिपात होता, अब पर निपात ही होता है ।।

यहाँ से 'एकदेशिनैकाधिकरणे' की अनुवृत्ति २।२।३ तक जायेगी ।।

अर्धं नपुंसकम् ।।२।२।२।। एकाधिकरण तत्पुरुष

अर्धम् १।१।। नपुंसकम् १।१।। **अनु०**—एकदेशिनैकाधिकरणे,तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्,सह सुपा, समासः ।। **अर्थः**—नपुंसकलिङ्गे वर्त्तमानो योऽर्द्धशब्दः, स एकाधिकरण-वाचिना एकदेशिना सुबन्तेन सह विभाषा समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ।। समप्रविभागे अर्द्धशब्दो नपुंसके वर्त्तते, ततोऽन्यत्र पुंल्लिङ्गः ।। अयमपि षष्ठीसमासा-पवादः ।। **उदा०**—पिप्पल्याः अर्द्धम्=अर्द्धपिप्पली । अर्द्धकोशातकी ।।

भाषार्थः—[अर्द्धम्] **अर्द्ध शब्द** [नपुंसकम्] **नपुंसकलिङ्ग में वर्त्तमान हो,तो एकाधिकरणवाची एकदेशी सुबन्त के साथ विकल्प से समास को प्राप्त होता है, और वह तत्पुरुष समास होता है ।। अर्द्ध शब्द आधे को कहने में नपुंसकलिङ्ग होता है, उससे अन्यत्र पुंल्लिङ्ग होता है ।। यह भी षष्ठीसमास का अपवादसूत्र है ।।**

उदा०—**अर्द्धपिप्पली (पिप्पली का आधा) । अर्द्धकोशातकी (आधी तुरई) ।।**

द्वितीयतृतीयचतुर्थतुर्याण्यन्यतरस्याम् ।।२।२।३।। तत्पुरुष

द्वितीयतृतीयचतुर्थतुर्याणि १।३।। अन्यतरस्याम् अ० ।। **स०**—द्वितीय० इत्यत्रे-तरेतरयोगद्वन्द्वः ।। **अनु०**—एकदेशिनैकाधिकरणे, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ।। **अर्थः**—द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, तुर्य इत्येते सुबन्ताः एकाधिकरणवाचिना एकदेशिसुबन्तेन सह विभाषा समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ।। षष्ठीसमासा-पवादोऽयम् ।। अन्यतरस्याम् ग्रहणेन पक्षे सोऽपि भवति, महाविभाषया तु विग्रहवाक्य-विकल्पः ।। **उदा०**—द्वितीयं भिक्षायाः=द्वितीयभिक्षा । षष्ठीसमासपक्षे—भिक्षा-द्वितीयम् । तृतीयं भिक्षायाः=तृतीयभिक्षा, भिक्षातृतीयम् । चतुर्थं भिक्षायाः=चतुर्थ-भिक्षा, भिक्षाचतुर्थम् । तुर्यं भिक्षायाः=तुर्यभिक्षा, भिक्षातुर्यम् ।।

भाषार्थः—[द्वितीयतृतीयचतुर्थतुर्याणि] **द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, तुर्य सुबन्त एका-धिकरणवाची एकदेशी सुबन्त के साथ** [अन्यतरस्याम्] **विकल्प से समास को प्राप्त होते हैं, और वह तत्पुरुष समास होता है ।।**

यह सूत्र षष्ठीसमास का अपवाद है । महाविभाषा का अधिकार आ रहा है,

उससे विग्रहवाक्य भी रहेगा। और 'अन्यतरस्याम्' कहने से पक्ष में षष्ठीसमास भी होगा। षष्ठीसमास होने पर षष्ठ्यन्त शब्द की उपसर्जन संज्ञा होने से पूर्वनिपात होगा,यही विशेष है ॥

उदा०—द्वितीयभिक्षा (भिक्षा का दूसरा भाग), भिक्षाद्वितीयम्। तृतीयभिक्षा, भिक्षातृतीयम्। चतुर्थभिक्षा, भिक्षाचतुर्थम्। तुर्यभिक्षा (भिक्षा का चौथा भाग), भिक्षातुर्यम् ॥

यहाँ से 'अन्यतरस्याम्' की अनुवृत्ति २।२।४ तक जायेगी ॥

तत्पुरुष 9

प्राप्तापन्ने च द्वितीयया ॥२।२।४॥

प्राप्तापन्ने १।२॥ च अ० ॥ द्वितीयया ३।१॥ स०—प्राप्तश्च आपन्नं च प्राप्तापन्ने, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—अन्यतरस्याम्, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—प्राप्त आपन्न इत्येतौ सुबन्तौ द्वितीयान्तेन सुबन्तेन सह विभाषा समस्येते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ उदा०—प्राप्तो जीविकां=प्राप्त-जीविकः। द्वितीयासमासपक्षे—जीविकाप्राप्तः। आपन्नो जीविकाम्=आपन्नजीविकः, जीविकापन्नः ॥

भाषार्थः—[प्राप्तापन्ने] प्राप्त आपन्न सुबन्त [च] भी [द्वितीयया] द्वितीयान्त सुबन्त के साथ विकल्प से समास को प्राप्त होते हैं, और वह तत्पुरुष समास होता है ॥

यह सूत्र द्वितीयातत्पुरुष (२।१।२३) का अपवाद है ॥ उदाहरण में एक-विभक्ति चापूर्वनिपाते (१।२।४४) से जीविका शब्द की उपसर्जनसंज्ञा होकर गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य (१।२।४८) से ह्रस्व हो जाता है ॥

उदा०—प्राप्तजीविकः (जीविका को प्राप्त किया)। द्वितीयासमास-पक्ष में —जीविकाप्राप्तः। आपन्नजीविकः (जीविका को प्राप्त किया), जीविकापन्नः ॥

तत्पुरुष 9

कालाः परिमाणिना ॥२।२।५॥

कालाः १।३॥ परिमाणिना ३।१॥ अनु०—तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ परिमाणस्यास्तीति परिमाणी, तेन ॥ अर्थ—परिमाणवाचिनः कालशब्दाः परिमाणिवाचिना सुबन्तेन सह विभाषा समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ उदा०—मासो जातस्य=मासजातः। संवत्सरजातः। द्व्यहजातः। त्र्यहजातः ॥

भाषार्थः—परिमाणवाची [कालाः] काल शब्द [परिमाणिना] परिमाणिवाची सुबन्त के साथ विकल्प से समास को प्राप्त होते हैं,और वह तत्पुरुष समास होता है॥

यह सूत्र भी षष्ठीसमास का अपवाद है ॥ जात शब्द परिमाणी है, अर्थात् परिमाण=मास या संवत्सर का अवधारण उसी में है ॥ यहाँ परिमाणी के साथ समास कहने से सामर्थ्य से कालवाची शब्द भी परिमाण ही होंगे ॥ उदा०—मासजातः (एक महीने का पैदा हुआ) । संवत्सरजातः (एक साल का पैदा हुआ) । द्व्यहजातः । त्र्यहजातः ॥

नञ् ॥२।२।६॥

नञ् अ० ॥ अनु०—तत्पुरुषः,विभाषा सुप्,सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—नञ् इत्येतदव्ययं समर्थेन सुबन्तेन सह विभाषा समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ उदा०—न ब्राह्मणः=अब्राह्मणः । अक्षत्रियः ॥

भाषार्थः—[नञ्] नञ् इस अव्यय का समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समास होता है, और वह तत्पुरुष समास होता है ॥

उदा०—अब्राह्मणः (जो ब्राह्मण नहीं) । अक्षत्रियः (जो क्षत्रिय नहीं) ॥

ईषदकृता ॥२।२।७॥

ईषत् अ० ॥ अकृता ३।१॥ अनु०—तत्पुरुषः,विभाषा, सुप्,सह सुपा,समासः ॥ अर्थः—'ईषत्' इत्ययं शब्दोऽकृदन्तेन सुबन्तेन सह विभाषा समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ उदा०—इषच्चासौ कडारः=ईषत्कडारः । ईषत्पिङ्गलः । ईषद्विकटः । ईषदुन्नतः ॥

भाषार्थः—[ईषत्] ईषत् शब्द [अकृता] अकृदन्त सुबन्त के साथ विकल्प से समास को प्राप्त होता है, और वह तत्पुरुष समास होता है ॥

उदा०—ईषत्कडारः (थोड़ा पीला) । ईषत्पिङ्गलः (थोड़ा पीला) । ईषद्विकटः (थोड़ा बिगड़ा हुआ)। ईषदुन्नतः (थोड़ा उन्नत) ॥

षष्ठी ॥२।२।८॥

षष्ठी १।१॥ अनु०—तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—षष्ठ्यन्तं सुबन्तं समर्थेन सुबन्तेन सह विभाषा समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ उदा०—राज्ञः पुरुषः=राजपुरुषः । ब्राह्मणकम्बलः ॥

भाषार्थः—[षष्ठी] षष्ठ्यन्त सुबन्त समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समास को प्राप्त होता है, और वह तत्पुरुष समास होता है ॥ सिद्धियाँ परि० १।२।४३ में देखें ॥

यहाँ से 'षष्ठी' की अनुवृत्ति २।२।१७ तक जायेगी ॥

याजकादिभिश्च ॥२।२।६॥

याजकादिभिः ३।३॥ च अ० ॥ स०—याजक आदिर्येषां ते याजकादयः, तैः याजकादिभिः, बहुव्रीहिः ॥ अनु०—षष्ठी, तत्पुरुषः, विभाषा, सुप्, सह सुपा, समासः॥ अर्थः—षष्ठ्यन्तं सुबन्तं याजकादिभिः समर्थैः सुबन्तैः सह विभाषा समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ उदा०—ब्राह्मणस्य याजकः=ब्राह्मणयाजकः । ब्राह्मणपूजकः ॥

भाषार्थः— षष्ठ्यन्त सुबन्त [याजकादिभिः] याजकादि सुबन्तों के साथ [च] भी विकल्प से समास को प्राप्त होता है, और वह तत्पुरुष समास होता है ॥ समास पूर्व सूत्र से ही प्राप्त था, पुनर्वचन तृजकाभ्यां कर्त्तरि(२।२।१५) से निषेध प्राप्त होने पर पुनः षष्ठीसमास प्राप्त कराने के लिये है ॥

उदा०— ब्राह्मणयाजकः (ब्राह्मण का यज्ञ करानेवाला)। ब्राह्मणपूजकः (ब्राह्मण की पूजा करनेवाला) ॥

[षष्ठीसमास-निषेध-प्रकरणम्]

न निर्द्धारणे ॥२।२।१०॥

न अ० ॥ निर्द्धारणे ७।१॥ अनु०—षष्ठी, तत्पुरुषः सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—निर्द्धारणे वर्त्तमानं षष्ठ्यन्तं सुबन्तं समर्थेन सुबन्तेन सह न समस्यते ॥ उदा०—मनुष्याणां क्षत्रियः शूरतमः । कृष्णा गवां सम्पन्नक्षीरतमा । धावन्नध्वगानां शीघ्रतमः ॥

भाषार्थः—जाति गुण अथवा क्रिया के द्वारा समुदाय में से एक के पृथक् करने को 'निर्धारण' कहते हैं ॥ [निर्द्धारणे] निर्धारण में वर्त्तमान षष्ठ्यन्त सुबन्त का समर्थ सुबन्त के साथ समास [न] नहीं होता है ॥ यह सारा प्रकरण षष्ठी (२।२।८) सूत्र से समास प्राप्त होने पर निषेध के लिये है ॥

उदा०—मनुष्याणां क्षत्रियः शूरतमः (मनुष्यों में क्षत्रिय शूरतम होते हैं) । कृष्णा गवां सम्पन्नक्षीरतमा (गौओं में काली गौ उत्तम और खूब दूध देनेवाली होती है) । धावन्नध्वगानां शीघ्रतमः (रास्ता चलनेवालों में दौड़नेवाला शीघ्रगामी होता है) ॥

उदाहरण में सारे मनुष्यों में से क्षत्रियों को शूर कहा है, सो निर्द्धारण अर्थ है । अतः मनुष्य और क्षत्रिय का समास नहीं हुआ । इन उदाहरणों में यतश्च निर्धारणम् (२।३।४१) से षष्ठी विभक्ति हुई है ॥

यहाँ से 'न' की अनुवृत्ति २।२।१६ तक जायेगी ॥

पूरणगुणसुहितार्थसदव्ययतव्यसमानाधिकरणेन ॥२।२।११॥

पूरणगुण ... करणेन ३।१॥ स०—सुहितोऽर्थो येषां ते सुहितार्थाः, बहुव्रीहिः। पूरणं च गुणश्च सुहितार्थाश्च सत् च अव्ययञ्च तव्यश्च समानाधिकरणञ्च पूरणगुणसुहितार्थसदव्ययतव्यसमानाधिकरणम्, तेन, समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—न, षष्ठी, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—पूरणप्रत्ययान्त, गुणवाचि, सुहितार्थ = तृप्त्यर्थक, सत्, अव्यय, तव्यप्रत्ययान्त समानाधिकरणवाचि इत्येतैः सुबन्तैः सह षष्ठ्यन्तं सुबन्तं न समस्यते ॥ उदा०—छात्राणां पञ्चमः। छात्राणां दशमः। गुण—बलाकायाः शौक्ल्यम्। काकस्य कार्ष्ण्यम्। सुहितार्थ—फलानां सुहितः। फलानां तृप्तः। सद्—ब्राह्मणस्य कुर्वन्। ब्राह्मणस्य कुर्वाणः। अव्यय—ब्राह्मणस्य कृत्वा। ब्राह्मणस्य हृत्वा। तव्य—ब्राह्मणस्य कर्त्तव्यम्। समानाधिकरण—शुकस्य माराविदस्य। राज्ञः पाटलिपुत्रकस्य। पाणिनेः सूत्रकारस्य॥

भाषार्थः—[पूरणगुणसुहितार्थसदव्ययतव्यसमानाधिकरणेन] **पूरणप्रत्ययान्त, गुणवाची शब्द, सुहित = तृप्ति अर्थवाले, सतसंज्ञक प्रत्यय, अव्यय, तव्यप्रत्ययान्त, तथा समानाधिकरणवाची शब्दों के साथ षष्ठ्यन्त सुबन्त समास को प्राप्त नहीं होता है।**

उदा०—**छात्राणां पञ्चमः (छात्रों में पाँचवाँ), छात्राणां दशमः। गण—बलाकायाः शौक्ल्यम् (बगुले की सफेदी), काकस्य कार्ष्ण्यम्। सुहितार्थ—फलानां सुहितः (फलों की तृप्ति), फलानां तृप्तः। सद्—ब्राह्मणस्य कुर्वन् (ब्राह्मण का कार्य करता हुआ), ब्राह्मणस्य कुर्वाणः। अव्यय—ब्राह्मणस्य कृत्वा (ब्राह्मण का कार्य करके), ब्राह्मणस्य हृत्वा। तव्य—ब्राह्मणस्य कर्त्तव्यम् (ब्राह्मण के करने योग्य)। समानाधिकरण—शुकस्य माराविदस्य (माराविद नाम के तोते का), राज्ञः पाटलिपुत्रकस्य (पाटलिपुत्रक राजा का), पाणिनेः सूत्रकारस्य॥**

पञ्चमः आदि में तस्य पूरणे डट् (५।२।४८) से डट् प्रत्यय, तथा नान्तादसङ्ख्या० (५।२।४९) से मट् आगम पूरण अर्थ में हुआ है। शौक्ल्यम् आदि गुणवाची शब्द हैं। तौ सत् (३।२।१२७) से शतृ शानच् प्रत्ययों की सत् संज्ञा कही है। कुर्वन् कुर्वाणः में शतृ शानच् प्रत्यय हुए हैं। कृत्वा हृत्वा में 'क्त्वा' प्रत्यय है, उसकी क्त्वातोसुन्कसुनः (१।१।३९) से अव्यय संज्ञा है, सो समास नहीं हुआ। शुकस्य माराविदस्य आदि समानाधिकरणवाले शब्द हैं, क्योंकि वही शुक है और वही माराविद नामवाला है। इसी प्रकार औरों में भी समझना चाहिये॥

क्तेन च पूजायाम् ॥२।२।१२॥

क्तेन ३।१॥ च अ० ॥ पूजायाम् ७।१॥ अनु०—न, षष्ठी, तत्पुरुषः, सुप्,

सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—पूजायां यः क्तप्रत्ययो विहितः, तेन सह षष्ठी न समस्यते॥ मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च (३।२।१८८) इत्यनेन विहितः क्तप्रत्ययोऽत्र पूजाशब्देन लक्ष्यते ॥ उदा०—राज्ञां मतः । राज्ञां बुद्धः । राज्ञां पूजितः ॥

भाषार्थः—[पूजायाम्] पूजा के अर्थ में जो [क्तेन] क्त प्रत्यय का विधान है, उसके साथ [च] भी षष्ठ्यन्त सुबन्त समास को प्राप्त नहीं होता ॥ मतिबुद्धि-पूजार्थेभ्यश्च इस सूत्र से जो क्त विहित है, उसी का उपलक्षण यहाँ पर पूजायाम् शब्द से किया गया है ॥ उदा०—राज्ञां मतः (राजाओं का माना हुआ) । राज्ञां बुद्धः (राजाओं का जाना हुआ) । राज्ञां पूजितः (राजाओं का पूजित) ॥

यहाँ से 'क्तेन' की अनुवृत्ति २।२।१३ तक जायेगी ॥

षष्ठी-तत्पुरुष निषेध अधिकरणवाचिना च ॥२।२।१३॥

अधिकरणवाचिना ३।१॥ च अ० ॥ अनु०—क्तेन, न, षष्ठी, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—अधिकरणवाचिना क्तेन सह षष्ठी न समस्यते ॥ उदा०—इदमेषां यातम् । इदमेषां भुक्तम् ॥

भाषार्थः—[अधिकरणवाचिना] अधिकरणवाची क्तप्रत्ययान्त सुबन्त के साथ [च] भी षष्ठ्यन्त सुबन्त समास को प्राप्त नहीं होता ॥

उदा०—इदमेषां यातम् (यह इनके जाने का रास्ता) । इदमेषां भुक्तम् (यह इनके भोजन का स्थान) ॥ क्तोऽधिकरणे च ध्रौव्यगति० (३।४।७६) सूत्र से अधिकरण में क्त विधान किया गया है ॥

तत्पुरुष निषेध कर्मणि च ॥२।२।१४॥

कर्मणि ७।१॥ च अ० ॥ अनु०—न, षष्ठी, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—कर्मणि या षष्ठी सा समर्थेन सुबन्तेन सह न समस्यते ॥ उभयप्राप्तौ कर्मणि (२।३।६६) इत्यनेन या कर्मणि षष्ठी विधीयते, तस्या एवात्र ग्रहणम्॥ उदा०—आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपालकेन । रोचते मे ओदनस्य भोजनं देवदत्तेन । रोचते मे मोदकस्य भोजनं बालेन ॥

भाषार्थः—[कर्मणि] कर्म में जो षष्ठी विहित है, वह [च] भी समर्थ सुबन्त के साथ समास को प्राप्त नहीं होती ॥

उदा०—आश्चर्यो गवां दोहो अगोपालकेन (अगोपालक का दूध दुहना आश्चर्य का विषय है) । रोचते मे ओदनस्य भोजनं देवदत्तेन (मुझे देवदत्त का चावल खाना

प्रिय है)।रोचते मे मोदकस्य भोजनं बालेन (मुझे बालक का लड्डू खाना प्रिय है)॥ 'गवाम्, ओदनस्य' आदि में उभयप्राप्तौ कर्मणि (२।३।६६) सूत्र से कर्म में षष्ठी हुई है, सो उनका प्रकृत सूत्र से भोजन आदि समर्थ सुबन्तों के साथ समास नहीं हुआ है॥

यहाँ से 'कर्मणि' की अनुवृत्ति २।२।१५ तक जायेगी॥

तृजकाभ्यां कर्त्तरि ॥२।२।१५॥

तृजकाभ्या ३।२॥ कर्त्तरि ७।१॥ स०—तृज० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः॥ अनु०—कर्मणि, न, षष्ठी, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, समासः॥ अर्थः—कर्त्तरि यौ तृच्-अकौ ताभ्यां सह कर्मणि या षष्ठी सा न समस्यते॥ उदा०—पुरां भेत्ता। अपां स्रष्टा। यवानां लावकः। कूपस्य खनकः॥

भाषार्थः—[कर्त्तरि] कर्त्ता में जो [तृजकाभ्याम्] तृच् और अकप्रत्ययान्त सुबन्त उनके साथ कर्म में जो षष्ठी वह समास को नहीं प्राप्त होती॥ यहाँ कर्त्तृकर्मणोः कृति (२।३।६५) से कर्म में षष्ठी होती है॥

उदा०—पुरां भेत्ता (पुरों को तोड़नेवाला)। अपां स्रष्टा (जलों को उत्पन्न करनेवाला)। यवानां लावकः (जौ को काटनेवाला)। कूपस्य खनकः (कूएं को खोदनेवाला)॥

यहाँ से 'अकः' की अनुवृत्ति २।२।१७ तक जायेगी॥

[1]कर्त्तरि च ॥२।२।१६॥

कर्त्तरि ७।१॥ च अ०॥ अनु०—अक, न, षष्ठी, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, समासः॥ अर्थः—कर्त्तरि या षष्ठी साऽकान्तेन सह न समस्यते॥ उदा०—तव शायिका। मम जागरिका॥

भाषार्थः—[कर्त्तरि] कर्त्ता में जो षष्ठी, वह [च] भी अकप्रत्ययान्त सुबन्त के साथ समास को प्राप्त नहीं होती है॥ 'वु' को युवोरनाकौ (७।१।१) से जो अक हुआ है, उसका ही इन दोनों सूत्रों में ग्रहण है॥

नित्यं क्रीडाजीविकयोः ॥२।२।१७॥

नित्यं १।१॥ क्रीडाजीविकयोः ७।२॥ स०—क्रीडा च जीविका च क्रीडाजीविके, तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः॥ अनु०—अक, षष्ठी, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, समासः॥

---

१. २।२।१५, १६ इन दो सूत्रों का व्याख्यान काशिका में महाभाष्य के विरुद्ध होने से मान्य नहीं॥ देखो—अष्टा० भाष्य स्वामी द० कृत, पृ० २४४।

अर्थः—क्रीडार्थे जीविकार्थे च षष्ठ्यन्तं सुबन्तं अकान्तेन सुबन्तेन सह नित्यं समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ उदा०—उद्दालकपुष्पभञ्जिका । वारणपुष्पप्रचायिका । जीविकायाम्—दन्तलेखकः । नखलेखकः ॥

भाषार्थः—[क्रीडाजीविकयोः] क्रीडा और जीविका अर्थ में षष्ठ्यन्त सुबन्त अक अन्तवाले सुबन्त के साथ [नित्यम्] नित्य ही समास को प्राप्त होता है, और वह तत्पुरुष समास होता है । विभाषा का अधिकार आ रहा था । अतः उसकी निवृत्ति के लिये यहाँ नित्य शब्द का ग्रहण है । सो पक्ष में विग्रह-वाक्य नहीं बनेगा ॥ षष्ठी (२।२।८) सूत्र से यहाँ समास प्राप्त ही था, पुनः यह सूत्र क्रीडाविषय में नित्य समास हो जावे, पक्ष में विग्रहवाक्य न रहे इसलिये है । तथा जीविका-विषय में षष्ठीसमास का तृजकाभ्यां कर्त्तरि (२।२।१५) से निषेध प्राप्त था, वहाँ भी समास हो जावे, इसलिये यह सूत्र है ॥

यहाँ से 'नित्यम्' की अनुवृत्ति २।२।१९ तक जायेगी ॥

तत्पुरुष

कुगतिप्रादयः ॥२।२।१८॥

कुगतिप्रादयः १।३॥ स०—प्र आदिर्येषां ते प्रादयः, कुश्च गतिश्च प्रादयश्च कुगतिप्रादयः, बहुव्रीहिगर्भो द्वन्द्वः ॥ अनु०—नित्यं, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—कुशब्दो, गतिसंज्ञकाः, प्रादयश्च शब्दाः समर्थेन सुबन्तेन सह नित्यं समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ उदा०—कुब्राह्मणः, कुपुरुषः । गतिः—उररीकृत्य, उररीकृतम् । प्रादयः—दुष्पुरुषः । सुपुरुषः । अतिपुरुषः ॥

भाषार्थः—[कुगतिप्रादयः] कु, गतिसञ्ज्ञक और प्रादि शब्द समर्थ सुबन्त के साथ समास को नित्य ही प्राप्त होते हैं, और वह तत्पुरुषसंज्ञक समास होता है ॥

उदा०—कुब्राह्मणः (बुरा ब्राह्मण), कुपुरुषः (बुरा पुरुष) । गतिः—उररीकृत्य (स्वीकार करके), उररीकृतम् । प्रादयः—दुष्पुरुषः (दुष्ट पुरुष) । सुपुरुषः (अच्छा पुरुष) । अतिपुरुषः (अच्छा पुरुष) ॥

यहाँ कु शब्द अव्यय लिया गया है । उररीकृत्य की गति संज्ञा ऊर्यादिच्विडाचश्च (१।४।६०) से होती है । इनकी सिद्धि १।४।५९ के समान ही जानें ॥

तत्पुरुष

उपपदमतिङ् ॥२।२।१९॥

उपपदम् १।१॥ अतिङ् १।१॥ स०—न तिङ् अतिङ्, नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—नित्यं, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, समासः ॥ अर्थः—अतिङन्तम् उपपदं समर्थेन शब्दान्तरेण सह नित्यं समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ उदा०—कुम्भं करोति=कुम्भकारः, नगरकारः ॥

भाषार्थः—[अतिङ्] तिङ्भिन्न जो [उपपदम्] उपपद, वह समर्थ शब्दान्तर के साथ नित्य समास को प्राप्त होता है, और वह तत्पुरुष समास होता है ।। उदा०—कुम्भकारः (कुम्हार), नगरकारः (नगर बनानेवाला) ।।

सिद्धि परि० १।१।३८ में की गई स्वादुङ्कारम् के समान ही है । भेद केवल यहाँ इतना है कि कर्मण्यण् (३।२।१) से अण् प्रत्यय हुआ है, णमुल् नहीं । शेष उसी के समान है ।।

यहाँ से 'उपपदम्' की अनुवृत्ति २।२।२२ तक जायेगी ।।

अमैवाव्ययेन ।।२।२।२०।।

अमा ३।१।। एव अ० ।। अव्ययेन ३।१।। अनु०—उपपदम्, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, समासः ।। अर्थः—अव्ययेन उपपदस्य यः समासः, सोऽमन्तेन अव्ययेनैव सह भवति, नान्येन ।। उदा०—स्वादुङ्कारं भुङ्क्ते । सम्पन्नङ्कारं भुङ्क्ते । लवणङ्कारं भुङ्क्ते ।।

भाषार्थः—यह सूत्र नियमार्थ है । [अव्ययेन] अव्यय के साथ उपपद का यदि समास होता है, तो वह [अमा] अमन्त अव्यय के साथ [एव] ही होता है, अन्य अव्ययों के साथ नहीं ।।

उदाहरणों की सिद्धि कृन्मेजन्तः (१।१।३८) के परि० में देखें । कृन्मेजन्तः से ही इनकी अव्यय संज्ञा होती है । स्वादुम् आदि मकारान्त शब्द उपपद हैं ।।

विशेषः—यहाँ उपपद का समास पूर्वसूत्र से सिद्ध था । अतः नियम हो जाता है । पुनः 'एवकार अमन्त उपपद का ही विशेषण हो,' इस इष्ट का अवधारण करने के लिये है । अर्थात् जिस सूत्र के द्वारा केवल अम् (णमुलादि) प्रत्यय का ही विधान हो, वहीं तदन्त के साथ समास हो । क्त्वा णमुल् दोनों प्रत्ययों का जहाँ एक साथ विधान हो, वहाँ इस सूत्र से समास न हो । यथा—अग्रे भुक्त्वा, अग्रे भोजम्, यहाँ विभाषाऽग्रेप्रथम० (३।४।२४) से दोनों प्रत्ययों का विधान है, अतः प्रकृत सूत्र से समास नहीं हुआ ।।

यहाँ से 'अमैवाव्ययेन' की अनुवृत्ति २।२।२१ तक जायेगी ।।

तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम् ।।२।२।२१।।

तृतीयाप्रभृतीनि १।३।। अन्यतरस्याम् अ० ।। स०—तृतीया प्रभृति येषां तानि तृतीयाप्रभृतीनि, बहुव्रीहिः ।। अनु०—अमैवाव्ययेन, उपपदम्, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, समासः ।। अर्थः—उपदंशस्तृतीयायाम् (३।४।४७) इति सूत्रमारभ्य यानि उपपदानि, तानि

तृतीयाप्रभृतीनि उपपदानि अमन्तेनैवाव्ययेन सह अन्यतरस्यां समस्यन्ते ।। उदा०—मूलकोपदंशं भुङ्क्ते, मूलकेन उपदंशं भुङ्क्ते । उच्चैःकारम् आचष्टे, उच्चैः कारम् । यष्टिग्राहम्, यष्टिं ग्राहम् ।।

भाषार्थः – [तृतीयाप्रभृतीनि] तृतीयाप्रभृति उपदंशस्तृतीयायाम् (३।४।४७) सूत्र से आरम्भ करके अन्वच्यानुलोम्ये (३।४।६४ तक) जो उपपद हैं, वे अमन्त अव्यय के साथ ही [अन्यतरस्याम्] विकल्प से समास को प्राप्त होते हैं ।।

उदा०—मूलकोपदंशं भुङ्क्ते (मूली को दाँत से काटकर खाता है), मूलकेन उपदंशं भुङ्क्ते । उच्चैःकारम् आचष्टे (दुःख की बात को भी ऊँचे स्वर से कहता है), उच्चैः कारम् । यष्टिग्राहं (लाठी लेकर), यष्टिं ग्राहम् ।।

पूर्वसूत्र की तरह 'उपदंशम्' आदि की अव्यय संज्ञा मकारान्त होने से है। उपदंशस्तृ० (३।४।४७) से उपपूर्वक 'दंश दशने' धातु से णमुल् प्रत्यय हुआ है । उच्चैःकारम् में कृ धातु से अव्ययेऽयथाभि० (३।४।५९) से णमुल् हुआ है । वृद्धि आदि पूर्ववत् हुई हैं । ग्रह धातु से द्वितीयायाञ्च (३।४।५३) से णमुल् प्रत्यय हुआ है। सो ये सब अमन्त अव्यय हैं, अतः मूलक आदि उपपद रहते विकल्प से समास हुआ है । असमासपक्ष में 'उच्चैःकारम्' उदाहरण में स्वर का भेद पड़ता है ।। यहाँ महाविभाषा के आते हुये भी अन्यतरस्याम् 'नित्य' पद की अनुवृत्ति को हटाने के लिये है ।'

यहाँ से 'तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम्' की अनुवृत्ति २।२।२२ तक जायेगी ।।

तत्पुरुष क्त्वा च ।।२।२।२२।।

क्त्वा ३।१।। च अ० ।। अनु०—तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम्, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, समासः ।। अर्थः—तृतीयाप्रभृतीनि उपपदानि क्त्वाप्रत्ययान्तेन सह अन्यतरस्यां समस्यन्ते. तत्पुरुषश्च समासो भवति ।। उदा०—उच्चैःकृत्य, उच्चैः कृत्वा ।।

भाषार्थः—तृतीयाप्रभृति जो उपपद वे [क्त्वा] क्त्वाप्रत्ययान्त शब्दों के साथ [च] भी विकल्प से समास को प्राप्त होते हैं, और वह तत्पुरुष समास होता है ।। पूर्वसूत्र से अमन्त में प्राप्त था, अतः यह सूत्र अन्यत्र भी विधान करे, इसलिये है ।।

उदा०—उच्चैःकृत्य (ऊँचा करके), उच्चैः कृत्वा ।।

समासपक्ष में क्त्वा को ल्यप् ७।१।३७ से हो गया । तथा असमासपक्ष में नहीं हुआ ।। यहाँ से तत्पुरुष समास का अधिकार समाप्त हुआ ।।

[बहुव्रीहि-समास-प्रकरणम्]

शेषो बहुव्रीहिः ॥२।२।२३॥

शेषः १।१॥ बहुव्रीहिः १।१॥ अर्थः—उक्तादन्यः शेषः । शेषः समासो बहुव्रीहि-संज्ञको भवति, इत्यधिकारो वेदितव्यः ॥ अग्र एवोदाहरिष्यामः ॥

भाषार्थः—जो ऊपर समास कहा गया है, उससे जो अन्य वह शेष है । [शेषः] शेष समास [बहुव्रीहिः] बहुव्रीहि-संज्ञक होता है, यह अधिकार २।२।२८ तक जानना चाहिये ॥

अनेकमन्यपदार्थे ॥२।२।२४॥

अनेकम् १।१॥ अन्यपदार्थे ७।१॥ स०—न एकम् अनेकम्, नञ्तत्पुरुषः । अन्य-च्चादः पदम् अन्यपदम्, तस्य अर्थः अन्यपदार्थः, तस्मिन्, कर्मधारयगर्भषष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—बहुव्रीहिः, विभाषा, सुप्, समासः ॥ अर्थः—अन्यपदार्थे वर्तमानम् अनेकं सुबन्तं परस्परं विभाषा समस्यते, बहुव्रीहिश्च समासो भवति ॥ उदा०—प्राप्तम् उदकं यं ग्रामं स प्राप्तोदको ग्रामः । ऊढो रथो येन स ऊढरथोऽनड्वान् । उपहृतः पशुः यस्मै स उपहृतपशुः । उद्धृत ओदनो यस्याः सा उद्धृतौदना स्थाली । चित्रा गावो यस्य स चित्रगुः, शबलगुः । वीराः पुरुषाः यस्मिन् स वीरपुरुषको ग्रामः ॥

भाषार्थः—[अन्यपदार्थे] अन्यपदार्थ में वर्त्तमान [अनेकम्] अनेक सुबन्त परस्पर समास को विकल्प से प्राप्त होते हैं, और वह समास बहुव्रीहि-संज्ञक होता है ॥

उदा०—प्राप्तोदको ग्रामः (प्राप्त हो गया है पानी जिस गाँव को) । ऊढरथो-ऽनड्वान् (जिसके द्वारा रथ ले जाया गया ऐसा बैल) । उपहृतपशुः (जिसके लिये पशु भेंट किया गया ऐसा पुरुष) । उद्धृतौदना स्थाली (जिस से चावल निकाल लिया गया, वह बटलोई) । चित्रगुः, शबलगुः । वीरपुरुषको ग्रामः (वीर पुरुषोंवाला गाँव) ॥

बहुव्रीहि समास में अन्यपद का अर्थ प्रधान होता है । जैसा कि चित्रगुः उदाहरण में चित्राः गावः दो पद थे, सो चित्रगुः का अर्थ न चित्रित है न गौ है, प्रत्युत किसी तीसरे ही पदार्थ का 'जिसकी चित्रित गायें हैं', उसका बोध होता है । अतः अन्य पदार्थ का ही प्रधानत्व है । इसी प्रकार सब उदाहरणों में समझें ॥ सूत्र में 'अनेकम्' इसलिये कहा है कि दो पदों से अधिकों का भी बहुव्रीहि समास हो जाये ॥ चित्रगुः आदि की सिद्धि परि० १।२।४८ पर देखें ॥

सङ्ख्ययाऽव्ययासन्नादूराधिकसङ्ख्याः सङ्ख्येये ।।२।२।२५।।

सङ्ख्यया ३।१।। अव्ययासन्नादूराधिकसङ्ख्याः १।३।। सङ्ख्येये ७।१।। स०—अव्ययञ्च आसन्नश्च अदूरश्च अधिकश्च सङ्ख्या च अव्ययासन्नादूराधिकसङ्ख्याः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ।। **अनु०**—बहुव्रीहिः, विभाषा, सुप्, समासः ।। **अर्थः**—अव्यय, आसन्न, अदूर, अधिक, सङ्ख्या इत्येते सुबन्ताः सङ्ख्येये वर्त्तमानया संख्यया सह विभाषा समस्यन्ते, बहुव्रीहिश्च समासो भवति ।। **उदा०**—उपदशाः । उपविंशाः । आसन्नदशाः । आसन्नविंशाः । अदूरदशाः । अदूरविंशाः । अधिकदशाः । अधिकविंशाः । संख्या —द्वित्राः, त्रिचतुराः, द्विदशाः ।।

भाषार्थः—[सङ्ख्येये] **सङ्ख्येय में वर्त्तमान जो** [सङ्ख्यया] **सङ्ख्या उसके साथ** [अव्ययासन्नादूराधिकसङ्ख्याः] **अव्यय, आसन्न, अदूर, अधिक तथा सङ्ख्या का समास विकल्प से हो जाता है, और वह बहुव्रीहिसमास होता है ।। जिस पदार्थ का गणन किया जाये, वह सङ्ख्येय कहाता है । दशानां समीपं ये ते उपदशाः, यहाँ दस जो पदार्थ गणन किये गये हैं वे सङ्ख्येय हुये, उनके जो समीप हैं, वे उपदशाः हैं । इस प्रकार सङ्ख्येय में वर्तमान दशन् सङ्ख्या है ।।**

बहुव्रीहि

दिङ्नामान्यन्तराले ।।२।२।२६।।

दिङ्नामानि १।३।। अन्तराले ७।१।। स०—दिशां नामानि दिङ्नामानि, षष्ठीतत्पुरुषः ।। **अनु०**—बहुव्रीहिः, विभाषा, सुप्, समासः ।। **अर्थः**—दिङ्नामानि सुबन्तानि अन्तराले वाच्ये परस्परं विभाषा समस्यन्ते, बहुव्रीहिश्च समासो भवति ।। **उदा०**—दक्षिणस्याश्च पूर्वस्याश्च दिशोर्यदन्तरालं सा दक्षिणपूर्वा दिक् । पूर्वोत्तरा । उत्तरपश्चिमा, पश्चिमदक्षिणा ।।

भाषार्थः—[दिङ्नामानि] **दिशा के नामवाची सुबन्तों का** [अन्तराले] **अन्तराल अर्थात् दो दिशाओं के बीच की दिशा (कोना) वाच्य हो, तो परस्पर विकल्प से समास होता है, और वह बहुव्रीहिसमास होता है ।। उदाहरणों की सिद्धियाँ परि० १।१।२७ में देखें ।।**

बहुव्रीहि

तत्र तेनेदमिति सरूपे ।।२।२।२७।।

तत्र अ०।। तेन ३।१।। इदम् १।१।। इति अ०।।सरूपे १।२।।स०—समानं रूपं ययोस्ते सरूपे, बहुव्रीहिः ।। **अनु०**—बहुव्रीहिः, विभाषा, सुप्, समासः ।। **अर्थः**—'तत्र' इति सप्तम्यन्ते सरूपे पदे, 'तेन' इति तृतीयान्ते सरूपे पदे, इदम् इत्येतस्मिन् अर्थे विभाषा समस्येते, बहुव्रीहिश्च समासो भवति ।। उदा०—केशेषु केशेषु गृहीत्वा इदं युद्धं

प्रवृत्तं=केशाकेशि, कचाकचि। दण्डैश्च दण्डैश्च प्रहृत्य इदं युद्धं प्रवृत्तं=दण्डादण्डि, मुसलामुसलि ॥

भाषार्थः—[तत्र] सप्तम्यन्त, तथा [तेन] तृतीयान्त [सरूपे] सरूप दो सुबन्त परस्पर [इदम्] 'यह' [इति] इस अर्थ में विकल्प से समास को प्राप्त होते हैं, और वह बहुव्रीहिसमास होता है ॥

उदा०—केशाकेशि (एक-दूसरे के केशों को पकड़-पकड़कर जो युद्ध हो वह युद्ध), कचाकचि। दण्डादण्डि (दोनों ओर से डण्डों से जो युद्ध हो वह युद्ध), मुसलामुसलि ॥ उदाहरणों में केशेषु केशेषु दण्डैश्च दण्डैश्च आदि परस्पर दोनों सरूप पद हैं, इदम्='यह' अर्थ है ही, सो समास हो गया ॥ केश आदि में दीर्घ अन्येषामपि दृश्यते (६।३।१३५) से होता है। तथा बहुव्रीहिसमास होने से यहाँ इच् कर्मव्यतिहारे (५।४।१२७) से समासान्त इच् प्रत्यय होकर केशाकेशि बना है। तिष्ठद्गु० (२।१।१६) गण में पाठ होने से इच्प्रत्ययान्त की अव्ययीभाव संज्ञा होती है। अतः उदाहरणों में नपुंसकलिङ्ग, तथा विभक्ति का लुक् होता है ॥

तेन सहेति तुल्ययोगे ॥२।२।२८॥

बहुव्रीहि

तेन ३।१॥ सह अ० ॥ इति अ० ॥ तुल्ययोगे ७।१॥ स०—तुल्येन योगः तुल्ययोगः, तस्मिन्,……तृतीयातत्पुरुषः ॥ अनु०—बहुव्रीहिः, विभाषा, सुप्, समासः ॥ अर्थः—तुल्ययोगे वर्त्तमानं सह इत्येतद् अव्ययं तेनेति तृतीयान्तेन सुबन्तेन सह विभाषा समस्यते, बहुव्रीहिश्च समासो भवति ॥ उदा०—सह पुत्रेण आगतः=सपुत्रः। सच्छात्रः। सकर्मकरः ॥

भाषार्थः—[सह] सह [इति] यह अव्यय [तुल्ययोगे] तुल्ययोग में वर्तमान हो, तो [तेन] तृतीयान्त सुबन्त के साथ समास को प्राप्त होता है, और वह समास बहुव्रीहि-संज्ञक होता है ॥

उदा०—सपुत्रः (पुत्र के साथ)। सच्छात्रः (छात्र के साथ)। सकर्मकरः (नौकर के साथ) ॥

तुल्य=समान (आगमन आदि क्रिया के साथ) योग अर्थात् सम्बन्ध को 'तुल्ययोग' कहते हैं। सो उदाहरण में 'पुत्र के साथ पिता आया है'।यहाँ आगमन क्रिया के साथ पिता-पुत्र दोनों का समान सम्बन्ध है,जो सह के द्वारा द्योतित होता है। अतः तुल्ययोग में सह वर्त्तमान है। पुत्रेण में तृतीया सहयुक्तेऽप्रधाने (२।३।१९) से हुई

है । सह को स भाव वोपसर्जनस्य (६।३।८०) से हुआ है । सच्छात्रः में छे च (६।१।७१) से तुक् आगम, तथा स्तोः श्चुना० (८।३।३९) से श्चुत्व हुआ है । शेष पूर्ववत् है ॥

द्वन्द्व

चार्थे द्वन्द्वः ॥२।२।२९॥

चार्थे ७।१॥ द्वन्द्वः १।१॥ स०—चस्य अर्थः चार्थः । तस्मिन् चार्थे, षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—विभाषा, सुप्, समासः । अनेकमन्यपदार्थे (२।२।२४) इत्यतः 'अनेकम्' मण्डूकप्लुतगत्यानुवर्त्तते ॥ अर्थः—चार्थे वर्त्तमानम् अनेकं सुबन्तम् परस्परं विभाषा समस्यते, द्वन्द्वश्च समासो भवति ॥ समुच्चयः, अन्वाचयः, इतरेतरयोगः, समाहारः इति चत्वारः चकारस्यार्थाः । तत्रेतरेतरयोगे, समाहारे च समासो भवति नान्यत्र, सामर्थ्याभावात् ॥ उदा०—रामश्च लक्ष्मणश्च इति रामलक्ष्मणौ । रामश्च लक्ष्मणश्च भरतश्च शत्रुघ्नश्चेति रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्नाः ॥ समाहारे—पाणी च पादौ च=पाणिपादम् ॥

भाषार्थः—[चार्थे] च के द्वारा द्योतित अर्थों में वर्त्तमान अनेक सुबन्तों का परस्पर विकल्प से समास हो जाता है, और वह [द्वन्द्वः] द्वन्द्व समास होता है ॥

'च' के द्वारा चार अर्थ द्योतित होते हैं—समुच्चय, अन्वाचय, इतरेतरयोग, और समाहार । इतरेतरयोग और समाहार में द्वन्द्व समास होता है, समुच्चय अन्वाचय में नहीं, सामर्थ्य का अभाव होने से ॥ द्वन्द्वसमास में सारे पदों के अर्थ प्रधान होते हैं ॥

उदा०—रामलक्ष्मणौ (राम और लक्ष्मण) । रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्नाः (राम लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न) । समाहार में—पाणिपादम् (हाथ और पैर) ॥

'राम सु लक्ष्मण सु' इस अवस्था में समासादि होकर पूर्ववत् ही रामलक्ष्मणौ बन गया । पाणिपादम्, यहाँ द्वन्द्वश्च प्राणि० (२।४।२) से एकवद्भाव हो जाता है ॥

उपसर्जन

उपसर्जनं पूर्वम् ॥२।२।३०॥

उपसर्जनम् १।१॥ पूर्वम् १।१॥ अनु०—समासः ॥ अर्थः—उपसर्जनसंज्ञकं समासे पूर्वं प्रयोक्तव्यम् ॥ तथा चैवोदाहृतम् ॥

भाषार्थः—[उपसर्जनम्] उपसर्जनसंज्ञक शब्द का समास में [पूर्वम्] पहले प्रयोग करना चाहिये ॥ प्रथमानिर्दिष्टं० (१।२।४३) से उपसर्जन संज्ञा होती है ॥

यहाँ ऊपर से 'समासः' जो प्रथमान्त आ रहा था, वह अर्थ के अनुसार विभक्ति-विपरिणाम होकर सप्तमी में बदल जाता है ॥

यहाँ से 'उपसर्जनम्' की अनुवृत्ति २।२।३१ तक, तथा 'पूर्वम्' की अनुवृत्ति २।२।३८ तक जायेगी ॥

राजदन्त परम - प्रयोग

राजदन्तादिषु परम् ॥२।२।३१॥

राजदन्तादिषु ७।३॥ परम् १।१॥ स०—राजदन्त आदिर्येषां ते राजदन्तादयः, तेषु, बहुव्रीहिः ॥ अनु०—उपसर्जनम् ॥ अर्थः—राजदन्तादिषु गणशब्देषु उपसर्जनं परं प्रयोक्तव्यम् ॥ उदा०—दन्तानां राजा=राजदन्तः । वनस्य अग्रे=अग्रेवणम् ॥

भाषार्थः—[राजदन्तादिषु] राजदन्तादि गणशब्दों में उपसर्जनसंज्ञक का [परम्] पर प्रयोग होता है । पूर्वसूत्र से पूर्वनिपात प्राप्त होने पर इस सूत्र का आरम्भ है । अतः यहाँ 'पूर्वम्' पद की अनुवृत्ति आते हुये भी नहीं बिठाई ॥

उदा०—राजदन्तः (दाँतों का राजा) । अग्रेवणम् (वन के आगे) ॥

दन्तानां राजा, आदि में षष्ठीतत्पुरुष समास है । सो दन्तानाम् उपसर्जन-संज्ञक है, अतः पूर्व प्रयोग न होकर परप्रयोग हुआ है । अग्रे में निपातन से सप्तमी का अलुक् माना है । वनं पुरगामिश्रकासिध्रकासारिका० (८।४।४) से वनं के न को ण हो गया है ॥

घि - पूर्व प्रयोग।

द्वन्द्वे घि ॥२।२।३२॥

द्वन्द्वे ७।१॥ घि १।१॥ अनु०—पूर्वम् ॥ अर्थः—द्वन्द्वसमासे घिसंज्ञकं पूर्वं प्रयोक्तव्यम् ॥ उदा०—पटुश्च गुप्तश्चेति=पटुगुप्तौ । मृदुगुप्तौ ॥

भाषार्थः—[द्वन्द्वे] द्वन्द्वसमास में [घि] घि-संज्ञक का पहले प्रयोग करना चाहिये ॥ द्वन्द्वसमास में सभी पद प्रधान होते हैं, सो किसी का भी पूर्व प्रयोग हो सकता है । अतः इस सूत्र ने नियम किया कि घ्यन्त का ही पूर्व प्रयोग हो ॥

उदा०—पटुगुप्तौ (चतुर और गुप्त) । मृदुगुप्तौ ॥ शेषो घ्यसखि (१।४।७) से पटु तथा मृदु की घि-संज्ञा है ॥

यहाँ से 'द्वन्द्वे' की अनुवृत्ति २।२।३४ तक जायेगी ॥

अजादि - अदन्त

अजाद्यदन्तम् ॥२।२।३३॥

अजाद्यदन्तम् १।१॥ स०—अच् आदिर्यस्य तत् अजादि, बहुव्रीहिः । अत् अन्ते यस्य तत् अदन्तम्, बहुव्रीहिः । अजादि चादः अदन्तं च अजाद्यदन्तम्, कर्मधारय-

तत्पुरुषः। अनु०—द्वन्द्वे, पूर्वम् ॥ अर्थः—द्वन्द्वसमासे अजाद्यदन्तं शब्दरूपं पूर्वं प्रयोक्तव्यम् ॥ उदा०—उष्ट्रखरम्। उष्ट्रशशकम् ॥

भाषार्थः—द्वन्द्वसमास में [अजाद्यदन्तम्] अजाद्यदन्त शब्दरूप का पूर्व प्रयोग होता है ॥

उदा०—उष्ट्रखरम् (ऊँट और गधा)। उष्ट्रशशकम् (ऊँट और खरगोश) ॥ उदाहरणों में उष्ट्र शब्द अजादि तथा अदन्त है, अतः वह पहले आया है। खर एवं शशक केवल अदन्त हैं, अतः पूर्व प्रयोग नहीं हुआ है ॥ यहाँ यह ध्यान रखना चाहिये कि जहाँ द्वन्द्वसमास में कई अजाद्यदन्त शब्द होंगे, वहाँ 'बहुषु अनियमः' इस वचन से कोई भी अजाद्यदन्त पहले आ सकता है। जैसे—उष्ट्ररथेन्द्राः, इन्द्ररथोष्ट्राः ॥

अल्पाच्तरम् ॥२।२।३४॥

अल्पाच्तरम् १।१॥ स०—अल्पोऽच् यस्मिन् तत् अल्पाच्, बहुव्रीहिः ॥ द्वे इमे अल्पाची, इदमनयोरतिशयेन अल्पाच्, तत् अल्पाच्तरम्। द्विवचनविभज्यो० (५।३।५७) इत्यनेन तरप् प्रत्ययः ॥ अनु०—द्वन्द्वे, पूर्वम् ॥ अर्थः—द्वन्द्वे समासेऽल्पाच्तरं शब्दरूपं पूर्वं प्रयोक्तव्यम् ॥ उदा०—प्लक्षन्यग्रोधौ। धवखदिरपलाशाः ॥

भाषार्थः—[अल्पाच्तरम्] अल्पाचतर शब्दरूप का द्वन्द्वसमास में पूर्व प्रयोग होता है ॥

उदा०—प्लक्षन्यग्रोधौ (पिलखन और वटवृक्ष)। धवखदिरपलाशाः ॥

प्लक्ष और न्यग्रोध में प्लक्ष अल्प अच्वाला है, तथा धवखदिरपलाशाः में धव अल्पाच्तर है, सो ये पहले आये हैं ॥ द्वन्द्वसमास में अनियम प्राप्त होने पर इन सूत्रों ने नियम कर दिया ॥

सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ ॥२।२।३५॥

सप्तमीविशेषणे १।२॥ बहुव्रीहौ ७।१॥ स०—सप्तमी च विशेषणञ्च सप्तमीविशेषणे, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—पूर्वम् ॥ अर्थः—बहुव्रीहिसमासे सप्तम्यन्तं विशेषणञ्च पूर्वं प्रयोक्तव्यम् ॥ उदा०—कण्ठे स्थितः कालो यस्य स कण्ठेकालः। उरसिलोमा। विशेषणम्—चित्रगुः, शबलगुः ॥

भाषार्थः—[बहुव्रीहौ] बहुव्रीहिसमास में [सप्तमीविशेषणे] सप्तम्यन्त जो पद, तथा विशेषणवाची जो पद हो, उसका पूर्व प्रयोग करना चाहिये ॥

बहुव्रीहिसमास में सभी पद उपसर्जन होते हैं। अतः कोई भी पद उपसर्जनं पूर्वम् (२।२।३०) से पहले आ सकता था। कोई नियम नहीं था, सो यह सूत्र बनाया ॥

उदा०—कण्ठेकालः (कण्ठ में स्थित है काला पदार्थ जिसके) । उरसिलोमा (छाती में बाल हैं जिसके) । विशेषणम्—चित्रगुः, शबलगुः ॥ उदाहरणों में कण्ठे उरसि सप्तम्यन्त होने से पहले आये हैं । यहाँ अमूर्द्धमस्तकात् स्वा० (६।३।१०) से विभक्ति का अलुक् हुआ है । सप्तम्युपमान० (वा० २।२।२४) इस वार्त्तिक से समास, तथा स्थित शब्द का लोप हुआ है ॥ चित्र तथा शबल यह गौ के विशेषण हैं, सो पहले आये हैं ॥

यहाँ से 'बहुव्रीहौ' की अनुवृत्ति २।२।३७ तक जायेगी ॥

निष्ठा ॥२।२।३६॥

निष्ठा १।१॥ अनु०—बहुव्रीहौ, पूर्वम् ॥ अर्थः—निष्ठान्तं शब्दरूपं बहुव्रीहौ समासे पूर्वं प्रयोक्तव्यम् ॥ उदा०—कटः कृतोऽनेन कृतकटः । भिक्षितभिक्षः । अवमुक्तोपानत्कः । आहूतसुब्रह्मण्यः ॥

भाषार्थः—बहुव्रीहिसमास में [निष्ठा] निष्ठान्त शब्दरूप का पहले प्रयोग होता है ॥ उदा०—कृतकटः (जिसने चटाई बना ली है) । भिक्षितभिक्षः (जिसने भिक्षा याचन करली है) । अवमुक्तोपानत्कः (जिसने जूता उतार दिया है) । आहूतसुब्रह्मण्यः (जिसने सुब्रह्मण्य को बुलाया है) ॥ कृत तथा भिक्षित आदि निष्ठान्त शब्द हैं ॥

यहाँ से 'निष्ठा' की अनुवृत्ति २।२।३७ तक जायेगी ॥

वाहिताग्न्यादिषु ॥२।२।३७॥

वा अ० ॥ आहिताग्न्यादिषु ७।३॥ स०—आहिताग्निः आदिर्येषां ते आहिताग्न्यादयः, तेषु, बहुव्रीहिः ॥ अनु०—निष्ठा, बहुव्रीहौ, पूर्वम् ॥ अर्थः—पूर्वेण नित्यं पूर्वनिपाते प्राप्ते विकल्प उच्यते ॥ आहिताग्न्यादिषु निष्ठान्तं शब्दरूपं बहुव्रीहौ समासे पूर्वं वा प्रयोक्तव्यम् ॥ उदा०—आहितोऽग्निः येन स आहिताग्निः, अग्न्याहितः । जातपुत्रः, पुत्रजातः ॥

भाषार्थः—[आहिताग्न्यादिषु] आहिताग्न्यादिगण में पठित निष्ठान्त शब्दों का बहुव्रीहिसमास में [वा] विकल्प से पूर्व प्रयोग करना चाहिये, अर्थात् पूर्वप्रयोग तथा परप्रयोग दोनों होंगे ॥ पूर्वसूत्र से नित्य ही निष्ठान्त का पूर्वप्रयोग प्राप्त था, विकल्प कह दिया ॥ उदा०—आहिताग्निः (जो अग्न्याधान कर चुका), अग्न्याहितः । जातपुत्रः (जिसके पुत्र उत्पन्न हुआ), पुत्रजातः ॥

यहाँ से 'वा' की अनुवृत्ति २।२।३८ तक जायेगी ॥

कडाराः कर्मधारये ॥२।२।३८॥

कडाराः १।३॥ कर्मधारये ७।१॥ अनु०—वा, पूर्वम् ॥ **अर्थः**—कर्मधारये समासे कडारादयः शब्दा वा पूर्वं प्रयोक्तव्याः ॥ उदा०—कडारश्चासौ जैमिनिश्च कडारजैमिनिः, जैमिनिकडारः ॥

भाषार्थः—[कर्मधारये] **कर्मधारयसमास में** [कडाराः] **कडारादि शब्दों का विकल्प से पूर्वप्रयोग होता है ॥ 'कडाराः' में बहुवचन होने से कडारादिगण लिया गया है ॥** विशेषणं विशेष्येण० (२।१।५६) **से समास होने पर विशेषण का पूर्वनिपात** उपसर्जनं० (२।२।३०) **से प्राप्त था, यहाँ विकल्प कह दिया ॥ उदा०—कडारजैमिनिः** (**पीला जैमिनि**), **जैमिनिकडारः ॥**

॥ इति द्वितीयः पादः ॥

तृतीयः पादः

[विभक्ति-प्रकरणम्]

अनन्त
9

अनभिहिते ॥२।३।१॥

अनभिहिते ७।१॥ स०—न अभिहितम् अनभिहितम्, तस्मिन्, नञ्तत्पुरुषः ॥ **अर्थः**—अनभिहिते = अकथिते = अनुक्ते = अनिर्दिष्टे कर्मादौ विभक्तिर्भवतीत्यधिकारो वेदितव्यः ॥ सामान्येन आपादपरिसमाप्तेः अधिकारोऽयं वेदितव्यः। विशेषतस्तु कारकविभक्तिष्वेव प्रवर्त्तते, न तु उपपदविभक्तिषु, तत्रानावश्यकत्वात् ॥ केनानभिहितम् ? तिङ्कृततद्धितसमासैः ॥ उदा०—कटं करोति। ग्रामं गच्छति ॥ 'कटम्, ग्रामम्' इत्यत्रानभिहितत्वात् **कर्मणि द्वितीया** (२।३।२) इति द्वितीया भवति ॥

भाषार्थः—[अनभिहिते] **अनभिहित = अकथित = अनुक्त = अनिर्दिष्ट कर्मादि कारकों में आगे कही हुई विभक्तियाँ होती हैं, ऐसा अधिकार जानना चाहिये ॥ यह अधिकार सामान्यतया पाद के अन्त तक है। पर विशेषतया कारक-विभक्तियों में ही प्रवृत्त होता है, उपपद-विभक्तियों (अर्थात् अमुक के योग में अमुक विभक्ति होती है) में अनावश्यक होने से प्रवृत्त नहीं होता ॥ अब प्रश्न होता है, किसके द्वारा अनभिहित ? सो तिङ् कृत् तद्धित एवं समास के द्वारा अनभिहित लिया गया है। जैसा कि—'देवदत्तः कटं करोति' यहाँ 'करोति' तिङन्त पद में तिप् कर्त्ता में आया है। अतः उसका कर्त्ता के साथ ही समानाधिकरण है, अर्थात् कर्त्ता को ही तिङन्त पद कहता है, 'कट' कर्म को नहीं कहता। सो यह 'कट' अनभिहित कर्म हो गया, अतः** कर्मणि द्वितीया (२।३।२) **से अनभिहित कर्म में द्वितीया विभक्ति हो गई है।**

इसी प्रकार ग्रामं गच्छति में जानें ।। अनभिहित कहने से अभिहित कर्मादि कारकों में विभक्तियाँ नहीं होतीं । जैसा कि—'क्रियते कटः देवदत्तेन' यहाँ 'क्रियते' में 'त' कर्मवाच्य में आया है । सो कर्म के साथ समानाधिकरण होने से कर्म को ही कहता है, कर्त्ता को नहीं । अतः यहाँ 'कट' अभिहित कर्म है। सो कट में पहले के समान द्वितीया विभक्ति नहीं हुई, अपितु प्रातिपदिकार्थ० (२।३।४६) से प्रथमा विभक्ति हो गई है । जो तिङ् से अभिहित है, उसका जो वचन होगा, वही क्रिया का भी होगा, यह भी समझना चाहिये ।।

इसी प्रकार कृत् में 'कृतः कटः देवदत्तेन' यहाँ 'कृतः' में 'क्त' कर्म में आया है, अतः कर्म को कहता है । सो कर्म कृत् के द्वारा अभिहित है । अतः उसमें द्वितीया न होकर पूर्वोक्तानुसार प्रथमा हो गई है । देवदत्त कर्त्ता 'क्त' के द्वारा अभिहित नहीं है, अतः अनभिहित कर्त्ता में कर्तृकरणयो० (२।३।१८) से तृतीया विभक्ति हुई है ।। इसी प्रकार तद्धित तथा समास के विषय में भी समझ लेना चाहिये । यह सब द्वितीयावृत्ति का विषय है, अतः अधिक नहीं दिया ।

द्वितीया

कर्मणि द्वितीया ।।२।३।२।।

कर्मणि ७।१।। द्वितीया १।१।। अनु०—अनभिहिते ।। अर्थः—अनभिहिते कर्मणि द्वितीया विभक्तिर्भवति ।। उदा०—ग्रामं गच्छति । कटं करोति ।।

भाषार्थः—अनभिहित [कर्मणि] कर्म में [द्वितीया] द्वितीया विभक्ति होती है ।। पूर्व सूत्र में 'कट' अनभिहित कैसे है, यह दिखा चुके हैं । अतः कर्तुरीप्सिततमं कर्म (१।४।४६) से कर्म संज्ञा होकर द्वितीया विभक्ति इस सूत्र से हो जाती है ।।

यहाँ से 'द्वितीया' की अनुवृत्ति २।३।५ तक, तथा 'कर्मणि' की अनुवृत्ति २।३।३ तक जायेगी ।।

तृतीया

तृतीया च होश्छन्दसि ।।२।३।३।।

तृतीया १।१।। च अ० ।। होः ६।१।। छन्दसि ७।१।। अनु०—अनभिहिते, कर्मणि, द्वितीया ।। अर्थः—छन्दसि विषये "हु दानादनयोः" इत्येतस्य धातोरनभिहिते कर्मणि कारके तृतीया विभक्तिर्भवति, चकाराद् द्वितीया च ।। उदा०—यवाग्वा अग्निहोत्रं जुहोति, यवागूम् अग्निहोत्रं जुहोति ।।

भाषार्थः—[छन्दसि] छन्दविषय में [होः] हु धातु के अनभिहित कर्म में [तृतीया] तृतीया विभक्ति होती है, [च] चकार से द्वितीया विभक्ति भी होती है ।। उदा०—यवाग्वा अग्निहोत्रं जुहोति (लप्सी को अग्नि में डालता है), यवागूम् अग्निहोत्रं जुहोति ।। यवागू+टा, इको यणचि (६।१।७४) लगकर यवाग्वा बन गया ।।

अन्तरान्तरेणयुक्ते ॥२।३।४॥

अन्तरान्तरेणयुक्ते ७।१॥ स०—अन्तरा च अन्तरेण च अन्तरान्तरेणौ, ताभ्यां युक्तम् अन्तरान्तरेणयुक्तम्, तस्मिन्, द्वन्द्वगर्भतृतीयातत्पुरुष: ॥ अनु०—द्वितीया ॥ अर्थ:—अन्तरा अन्तरेण शब्दौ निपातौ, ताभ्यां योगे द्वितीया विभक्तिर्भवति॥उदा०—अन्तरा त्वां च मां च कमण्डलु: । अन्तरेण पुरुषकारं न किञ्चित् लभ्यते । अग्निमन्तरेण कथं पचेत् । अन्तरेण त्वां च मां च कमण्डलु: ॥

भाषार्थ:—[अन्तरान्तरेणयुक्ते] अन्तरा अन्तरेण शब्द निपात हैं, उनके योग में द्वितीया विभक्ति होती है ॥ उदा०—अन्तरा त्वां च मां च कमण्डलु: (तुम्हारे और मेरे बीच में कमण्डलु है) । अन्तरेण पुरुषकारं न किञ्चित् लभ्यते (बिना पुरुषार्थ के कुछ भी प्राप्त नहीं होता) । अग्निमन्तरेण कथं पचेत् (अग्नि के बिना कैसे पके) । अन्तरेण त्वां च मां च कमण्डलु:(तुम्हारे और मेरे बीच में कमण्डलु है)॥

कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे ॥२।३।५॥

कालाध्वनो: ७।२॥ अत्यन्तसंयोगे ७।१॥ स०—कालश्च अध्वा च कालाध्वानौ, तयो: कालाध्वनो:, इतरेतरयोगद्वन्द्व: । अन्तमतिक्रान्तोऽत्यन्त:, अत्यन्त: संयोग: अत्यन्तसंयोग:, तस्मिन्, कर्मधारयतत्पुरुष: ॥ अनु०—द्वितीया ॥ अर्थ:—कालवाचिनि शब्दे, अध्ववाचिनि शब्दे च अत्यन्तसंयोगे गम्यमाने द्वितीया विभक्तिर्भवति ॥ उदा०—मासम् अधीतोऽनुवाक: । मासं कल्याणी । मासं गुडधाना: । अध्वनि—क्रोशमधीते । क्रोशं कुटिला नदी । क्रोशं पर्वत: ॥

भाषार्थ:—[अत्यन्तसंयोगे] अत्यन्त संयोग गम्यमान होने पर [कालाध्वनो:] कालवाची और अध्ववाची=मार्गवाची शब्दों में द्वितीया विभक्ति होती है ॥ अत्यन्तसंयोग का अर्थ है—क्रिया गुण अथवा द्रव्य के साथ काल तथा अध्वा का पूर्ण सम्बन्ध ॥

उदा०—मासम् अधीतोऽनुवाक: (महीनेभर अनुवाक पढ़ा) । मासं कल्याणी (मासभर सुखदायी) । मासं गुडधाना: (मासभर गुड़धानी) । अध्वा—क्रोशमधीते (कोसभर पढ़ता है) । क्रोशं कुटिला नदी (कोसभर तक नदी टेढ़ी है) । क्रोशं पर्वत: (कोस भर तक पर्वत है) ॥

यहाँ से 'कालाध्वनो:' की अनुवृत्ति २।३।७ तक, तथा 'अत्यन्तसंयोगे' की अनुवृत्ति २।३।६ तक जायेगी ॥

अपवर्गे तृतीया ॥२।३।६॥

अपवर्गे ७।१॥ तृतीया १।१॥ अनु०—कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे ॥ अर्थः—अपवर्गे गम्यमाने कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे तृतीया विभक्तिर्भवति ॥ उदा०—मासेनानुवाकोऽधीतः, संवत्सरेणानुवाकोऽधीतः । अध्वनः—क्रोशेनानुवाकोऽधीतः, योजनेनानुवाकोऽधीतः ॥

भाषार्थः—पूर्वसूत्र से द्वितीया प्राप्त थी । यहाँ पर [अपवर्गे] अपवर्ग (अर्थात् क्रिया की समाप्ति होने पर फल भी मिल जाये) प्रतीत होने पर कालवाची और मार्गवाची शब्दों से अत्यन्तसंयोग गम्यमान होने पर [तृतीया] तृतीया विभक्ति होती है ॥

उदा०—मासेनानवाकोऽधीतः (मासभर में अनुवाक पढ़ लिया, और उसे याद भी कर लिया), संवत्सरेणानुवाकोऽधीतः । अध्वा का—क्रोशेनानवाकोऽधीतः, योजनेनानुवाकोऽधीतः (कोस एवं योजनभर में अनुवाक पढ़ लिया) ॥ मासेनानुवाकोऽधीतः का अर्थ यह होगा कि मासभर में अनुवाक पढ़ा, और वह अच्छे प्रकार याद भी हो गया । सो याद हो जाना अपवर्ग हुआ ॥ अनुवाक, अष्टकादि वेद में कुछ मन्त्रों के गणन का नाम है ॥

सप्तमीपञ्चम्यौ कारकमध्ये ॥२।३।७॥

सप्तमीपञ्चम्यौ १।२॥ कारकमध्ये ७।१॥ स०—सप्तमी च पञ्चमी च सप्तमीपञ्चम्यौ, इतरेतरयोगद्वन्द्वः । कारकयोर्मध्यः कारकमध्यः, तस्मिन्……, षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—कालाध्वनोः ॥ अर्थः—कारकयोर्मध्ये यौ कालाध्वानौ तद्वाचिभ्यां शब्दाभ्यां सप्तमीपञ्चम्यौ विभक्ती भवतः ॥ उदा०—अद्य देवदत्तो भुक्त्वा द्व्यहे भोक्ता । अद्य देवदत्तो भुक्त्वा द्व्यहाद् भोक्ता । एव त्र्यहे त्र्यहाद् वा भोक्ता । अध्वनः—इहस्थोऽयमिष्वासः क्रोशे लक्ष्यं विध्यति । क्रोशात् लक्ष्यं विध्यति ॥

भाषार्थः—[कारकमध्ये] दो कारकों के बीच में जो काल और अध्वा तद्वाची शब्दों में [सप्तमीपञ्चम्यौ] सप्तमी और पञ्चमी विभक्ति होती हैं ॥

उदा०—अद्य देवदत्तो भुक्त्वा द्व्यहे भोक्ता (आज देवदत्त खाकर दो दिन के पश्चात् खायेगा) । अद्य देवदत्तो भुक्त्वा द्व्यहाद् भोक्ता । एवं त्र्यहे त्र्यहाद् वा भोक्ता । अध्वा का—इहस्थोऽयमिष्वासः क्रोशे लक्ष्यं विध्यति (यहाँ पर स्थित यह बाण चलानेवाला कोसभर पर लक्ष्य को बींधता है) । क्रोशात् लक्ष्यं विध्यति ॥ अद्य देवदत्तो

भुक्त्वा द्व्यहे भोक्ता, यहाँ कारक को शक्ति मानने से दो कारकों के मध्यवाली बात ठीक हो जाती है। क्योंकि आज की भोजनक्रिया की कर्त्तृ-शक्ति, तथा दो दिन के पश्चात् की भोजनक्रिया का कर्त्तृ-शक्ति भिन्न-भिन्न हैं, अतः कारकमध्य हो गया। इसी प्रकार इहस्थोऽयमिष्वासः क्रोशे लक्ष्यं विध्यति, यहाँ भी 'इष्वासः' कर्त्ता है 'लक्ष्यं' कर्म है। सो 'क्रोश' अध्वा कर्त्ता एवं लक्ष्य कर्म कारक के मध्य में है। अतः क्रोश शब्द से सप्तमी एवं पञ्चमी हो गई है। अथवा कर्म और अपादान कारक के मध्य में है। कर्म पूर्ववत् ही है, तथा अपादान जहाँ से बाण छूटता है वह है॥

द्वितीया

कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया ॥२।३।८॥

कर्मप्रवचनीययुक्ते ७।१॥ द्वितीया १।१॥ स०—कर्मप्रवचनीयैर्युक्तम् कर्मप्रवचनीययुक्तम्, तस्मिन्······ तृतीयातत्पुरुषः ॥ अर्थः—कर्मप्रवचनीयसञ्ज्ञकैः शब्दैर्युक्ते द्वितीया विभक्तिर्भवति ॥ उदा०—शाकल्यस्य संहितामनु प्रावर्षत् ॥

भाषार्थः—[कर्मप्रवचनीययुक्ते] कर्मप्रवचनीयसंज्ञक शब्दों के योग में [द्वितीया] द्वितीया विभक्ति होती है॥ उदाहरण में अनुर्लक्षणे (१।४।८३) से अनु की कर्मप्रवचनीय संज्ञा हुई है, अतः संहिताम् यहाँ द्वितीया विभक्ति हो गई॥

यहाँ से 'कर्मप्रवचनीययुक्ते' की अनुवृत्ति २।३।११ तक जायेगी॥

सप्तमी

यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी ॥२।३।९॥

यस्मात् ५।१॥ अधिकम् १।१॥ यस्य ६।१॥ च अ० ॥ ईश्वरवचनम् १।१॥ तत्र अ० ॥ सप्तमी १।१॥ स०—ईश्वरस्य वचनम् ईश्वरवचनम्, षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—कर्मप्रवचनीययुक्ते ॥ अर्थः—यस्माद् अधिकं यस्य च ईश्वरवचनं तत्र कर्मप्रवचनीययोगे सप्तमी विभक्तिर्भवति ॥ उदा०—उपखार्य्यां द्रोणः, उपनिष्के कार्षापणम्। अधि ब्रह्मदत्ते पञ्चालाः, अधि पञ्चालेषु ब्रह्मदत्तः॥

भाषार्थः – [यस्मात्] जिससे [अधिकम्] अधिक हो, [च] और [यस्य] जिसका [ईश्वरवचनम्] ईश्वरवचन अर्थात् सामर्थ्य हो, [तत्र] उसमें कर्मप्रवचनीय के योग में [सप्तमी] सप्तमी विभक्ति होती है॥ पूर्वसूत्र से द्वितीया प्राप्त थी, उसका यह अपवाद है॥

उदा०—उप खार्य्यां द्रोणः (खारी से अधिक द्रोण), उप निष्के कार्षापणम्। अधि ब्रह्मदत्ते पञ्चालाः, अधि पञ्चालेषु ब्रह्मदत्तः।

स्व स्वामी दोनों सम्बन्धी शब्द होने से पञ्चाल तथा ब्रह्मदत्त दोनों में पर्याय से सप्तमी विभक्ति होती है॥ उपखार्याम् आदि में उप की उपोऽधिके च (१।४।८६) से, तथा अधि ब्रह्मदत्ते में अधि की अधिरीश्वरे (१।४।९६) से कर्मप्रवचनीय संज्ञा है॥

पञ्चम्यपाङ्परिभिः ॥२।३।१०॥ पञ्चमी

पञ्चमी १।१॥ अपाङ्परिभिः ३।३॥ स०–अपश्च आङ् च परिश्च अपाङ्-परयः, तैः……,इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ **अनु०**—कर्मप्रवचनीययुक्ते ॥ **अर्थः**—अप आङ् परि इत्येतैः कर्मप्रवचनीयसञ्ज्ञकैर्योगे पञ्चमी विभक्तिर्भवति ॥ **उदा०**—अप त्रिगर्तेभ्यो वृष्टो देवः । आपाटलिपुत्राद् वृष्टो देवः । परि त्रिगर्तेभ्यो वृष्टो देवः ॥

भाषार्थः—**कर्मप्रवचनीय-संज्ञक** [अपाङ्परिभिः] **अप आङ् परि के योग में** [पञ्चमी] **पञ्चमी विभक्ति होती है** ॥ अपपरी वर्जने (१।४।८७), **तथा** आङ् मर्यादावचने (१।४।८८) **से कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है** ॥

यहाँ से 'पञ्चमी' की अनुवृत्ति २।३।११ **तक जायेगी** ॥

प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात् ॥२।३।११॥ पञ्चमी

प्रतिनिधिप्रतिदाने १।२॥ च अ० ॥ यस्मात् ५।१॥ स०—प्रतिनिधिश्च प्रतिदानञ्च प्रतिनिधिप्रतिदाने, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ **अनु०**—पञ्चमी, कर्मप्रवचनीययुक्ते॥ **अर्थः**—यस्मात् प्रतिनिधिः यस्माच्च प्रतिदानं तत्र कर्मप्रवचनीययोगे पञ्चमी विभक्तिर्भवति ॥ **उदा०**—अभिमन्युरर्जुनतः प्रति, प्रद्युम्नो वासुदेवतः प्रति ॥ प्रतिदाने—तिलेभ्यः प्रति माषान् अस्मै प्रतियच्छति ॥

भाषार्थः—[यस्मात्] **जिससे** [प्रतिनिधिप्रतिदाने] **प्रतिनिधित्व हो, तथा जिससे प्रतिपादन हो, उससे** [च] **पञ्चमी विभक्ति होती है ॥ उदाहरण में अर्जुन तथा वासुदेव से प्रतिनिधित्व हुआ है । सो उसमें पञ्चमी विभक्ति होने से** प्रतियोगे पञ्चम्यास्तसिः (५।४।४४) **से तसि प्रत्यय हुआ है ।** प्रतिः प्रतिनिधिप्रतिदानयोः (१।४।९१) **से प्रति की कर्मप्रवचनीय संज्ञा हुई है ॥ तिलों से उड़द बदले जा रहे हैं, सो प्रतिदान होने से तिल में पञ्चमी विभक्ति हुई ॥**

द्वितीया चतुर्थी

गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि ॥२।३।१२॥

गत्यर्थकर्मणि ७।१॥ द्वितीयाचतुर्थ्यौ १।२॥ चेष्टायाम् ७।१॥ अनध्वनि ७।१॥ स०—गतिरर्थो येषां ते गत्यर्थाः, गत्यर्थानां (धातूनां) कर्म गत्यर्थकर्म, तस्मिन्…, बहुव्रीहिगर्भषष्ठीतत्पुरुषः । द्वितीया च चतुर्थी च द्वितीयाचतुर्थ्यौ, इतरेतरयोगद्वन्द्वः । न अध्वा अनध्वा, तस्मिन्, नञ्तत्पुरुषः ॥ **अनु०**—अनभिहिते ॥ **अर्थः**—चेष्टाक्रियाणां गत्यर्थानां धातूनाम् अध्ववर्जितेऽनभिहिते कर्मणि कारके द्वितीयाचतुर्थ्यौ विभक्ती भवतः ॥**उदा०**—ग्रामं व्रजति, ग्रामाय व्रजति । ग्रामं गच्छति, ग्रामाय गच्छति ॥

भावार्थः—[चेष्टायाम्] **चेष्टा जिनकी क्रिया हो, ऐसे** [गत्यर्थकर्मणि] **गत्य-**

र्थक धातुओं के [अनध्वनि] मार्गरहित कर्म में [द्वितीयाचतुर्थ्यौ] द्वितीया और चतुर्थी विभक्ति होती हैं ॥

उदा०—ग्रामं व्रजति (गाँव को जाता है) इत्यादि में व्रजादि गत्यर्थक धातु हैं। इनका कर्म ग्राम है, सो केवल द्वितीया (२।३।२) प्राप्त थी, चतुर्थी का भी विधान कर दिया है ॥ गाँव को चलकर चेष्टा करके जायेगा, अतः चेष्टा-क्रियावाली व्रज वा गम् धातु है ॥

चतुर्थी सम्प्रदाने ॥२।३।१३॥

चतुर्थी १।१॥ सम्प्रदाने ७।१॥ अनु०—अनभिहिते ॥ अर्थः—अनभिहिते सम्प्रदानकारके चतुर्थी विभक्तिर्भवति ॥ उदा०—माणवकाय भिक्षां ददाति । शिष्याय विद्यां ददाति । देवदत्ताय रोचते मोदकः ॥

भाषार्थः—अनभिहित [सम्प्रदाने] सम्प्रदान कारक में [चतुर्थी] चतुर्थी विभक्ति होती है ॥

उदा०—माणवकाय भिक्षां ददाति (बच्चे को भिक्षा देता है)। शिष्याय विद्यां ददाति। देवदत्ताय रोचते मोदकः ॥

सम्प्रदान संज्ञा कर्मणा यमभि० (१।४।३२) से होती है। देवदत्ताय रोचते में रुच्यर्थानां प्रीय० (१।४।३३) से सम्प्रदान संज्ञा हुई है ॥

यहाँ से 'चतुर्थी' की अनुवृत्ति २।३।१८ तक जायेगी ॥

क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः ॥२।३।१४॥

क्रियार्थोपपदस्य ६।१॥ च अ० ॥ कर्मणि ७।१॥ स्थानिनः ६।१॥ स०—क्रियार्थं इयं=क्रियार्था, तत्पुरुषः। क्रियार्था क्रिया उपपदं यस्य स क्रियार्थोपपदः (धातुः), तस्य ···, उत्तरपदलोपी बहुव्रीहिः ॥ अनु०—चतुर्थी, अनभिहिते ॥ यत्र गम्यते चार्थो न च प्रयुज्यते शब्दः, स स्थानी ॥ अर्थः—स्थानिनः=अप्रयुज्यमानस्य क्रियार्थोपपदस्य धातोः अनभिहिते कर्मणि कारके चतुर्थी विभक्तिर्भवति ॥ कर्मणि द्वितीया प्राप्ता, चतुर्थी विधीयते ॥ उदा०—एधेभ्यो व्रजति । पुष्पेभ्यो व्रजति । वृकेभ्यो व्रजति । शशेभ्यो व्रजति ॥

भाषार्थः—[क्रियार्थोपपदस्य] क्रिया के लिये क्रिया उपपद हो जिसकी, ऐसी [स्थानिनः] अप्रयुज्यमान धातु के अनभिहित [कर्मणि] कर्म कारक में [च] भी चतुर्थी विभक्ति होती है ॥

उदा०—एधेभ्यो व्रजति (इंधन को लेने के लिये जाता है)। पुष्पेभ्यो व्रजति। वृकेभ्यो व्रजति (भेड़ियों को मारने के लिये जाता है)। शशेभ्यो व्रजति ॥

उदाहरण में व्रजति क्रियार्थ क्रिया उपपद है। क्योंकि जाना इसलिये हो रहा है कि इंधन को लाना क्रिया करे, या वृकों को मारे। सो क्रिया के लिये क्रिया हो हो रही है। यहाँ एधान् (आहर्तुं) व्रजति, वृकान् (हन्तुं) व्रजति, ऐसा चाहिये था, पर स्थानिनः=अप्रयुज्यमान कहा है। अतः आहर्तुं या हन्तुं का प्रयोग नहीं किया है, केवल उसका अर्थ है। यहाँ पर तुमुन्ण्वुलौ क्रियायाम्० (३।३।१०) से व्रजति क्रिया उपपद है, क्योंकि क्रियायाम् में सप्तमी है, उसका विशेषण क्रियार्थायाम् है। अतः तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् (३।१।९२) से उपपद संज्ञा हो गई है॥ तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां० से आहर्तुम् आदि में तुमुन् प्रत्यय होता है, यह सूत्र उसी का विषय है॥

तुमर्थाच्च भाववचनात् ॥२।३।१५॥ चतुर्थी

तुमर्थात् ५।१॥ च अ० ॥ भाववचनात् ५।१॥ स०—तुमुनः अर्थ इवार्थो यस्य स तुमर्थः, तस्मात् ..., बहुव्रीहिः। उच्येते अनेनेति वचनः, भावस्य वचनः भाववचनः, तस्मात्, षष्ठीतत्पुरुषः॥ अनु०—चतुर्थी, अनभिहिते॥ अर्थः—तुमर्थाद् भाववचन-प्रत्ययान्तात् प्रातिपदिकात् चतुर्थी विभक्तिर्भवति॥ उदा०—पाकाय व्रजति। त्यागाय व्रजति। सम्पत्तये व्रजति। इष्टये व्रजति॥

भाषार्थः—[तुमर्थात्] तुमर्थ [भाववचनात्] भाववचन से [च] भी चतुर्थी विभक्ति होती है॥

उदा०—पाकाय व्रजति (पकाने के लिये जाता है)। त्यागाय व्रजति (त्याग करने के लिए जाता है)। सम्पत्तये व्रजति (सम्पन्न करने के लिए जाता है)। इष्टये व्रजति (यज्ञ करने के लिए जाता है)॥

इस सूत्र में प्रयुक्त भाववचन शब्द से भाववचनाश्च (३।३।११) के विषय को लक्षित किया गया है। उस सूत्र से क्रियार्थक्रिया के उपपद होने पर घञ् आदि प्रत्ययों का विधान किया है। उसी विषय में तुमुन्ण्वुलौ० (३।३।१०) से तुमुन् भी विहित है। अतः घञ् आदि तुमर्थ भाववचन हुए। इस प्रकार पक्तुं व्रजति, यष्टुं व्रजति के अर्थ में पाकाय व्रजति, इष्टये व्रजति के प्रयोग के लिए यह सूत्र है॥

नमःस्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च ।२।३।१६। चतुर्थी

नमःस्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगात् ५।१॥ च अ० ॥ स०—नमश्च स्वस्ति च स्वाहा च स्वधा च अलञ्च वषट् च, इति नमःस्वस्तिस्वाहास्वधालंवषट्, तैर्योगः नमःस्वस्ति ·· योगः, तस्मात् ,द्वन्द्वगर्भस्तृतीयातत्पुरुषः॥ अनु०—चतुर्थी॥ अर्थः—नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलं, वषट् इत्येतैः शब्दैर्योगे चतुर्थी विभक्तिर्भवति॥ उदा०—नमो गुरुभ्यः, नमो देवेभ्यः। स्वस्ति प्रजाभ्यः। अग्नये स्वाहा, सोमाय

स्वाहा। स्वधा पितृभ्यः। अलं मल्लो मल्लाय। अलमित्यर्थग्रहणम – प्रभुर्मल्लो मल्लाय। वषड् अग्नये वषड् इन्द्राय॥

भाषार्थः [नमःस्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगात्] नमः स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा अलं, वषट् इन शब्दों के योग में [च] भी चतुर्थी विभक्ति होती है॥

उदा०—नमो गुरुभ्यः (गुरुओं को नमस्कार है), नमो देवेभ्यः। स्वस्ति प्रजाभ्यः (प्रजा का कल्याण हो)। अग्नये स्वाहा (अग्नि देवता के लिये आहुति) सोमाय स्वाहा (सोम के लिए आहुति)। स्वधा पितृभ्यः (पितरों के लिए अन्न)। अलं मल्लो मल्लाय (पहलवान के लिए पहलवान समर्थ है), प्रभुर्मल्लो मल्लाय (मल्ल मल्ल के लिए समर्थ है)। वषड् अग्नये (अग्नि के लिए हवि त्याग), वषड् इन्द्राय॥

चतुर्थी

मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु॥२।३।१७॥

मन्यकर्मणि ७।१॥ अनादरे ७।१॥ विभाषा १।१॥ अप्राणिषु ७।३॥ स०—मन्यस्य कर्म मन्यकर्म तस्मिन्, षष्ठीतत्पुरुषः। न आदरः अनादरः, तस्मिन् अनादरे नञ्तत्पुरुषः। न प्राणिनः अप्राणिनः, तेषु, नञ्तत्पुरुषः॥ अनु०—चतुर्थी॥ अर्थः—अनादरे गम्यमाने, प्राणिवर्जिते मन्यते कर्मणि विभाषा चतुर्थी विभक्तिर्भवति॥ उदा०—न त्वा तृणं मन्ये, न त्वा तृणाय मन्ये। न त्वा बुसं मन्ये, न त्वा बुसाय मन्ये॥

भाषार्थः—[अनादरे] अनादर गम्यमान होने पर, [मन्यकर्मणि] मन्य धातु के [अप्राणिषु] प्राणिवर्जित कर्म में चतुर्थी विभक्ति [विभाषा] विकल्प से होती है॥

उदा०—न त्वा तृणं मन्ये (मैं तमको तिनके के बराबर भी नहीं समझता), न त्वा तृणाय मन्ये। न त्वा बसं मन्ये (मैं तुमको बुस के बराबर भी नहीं समझता) न त्वा बसाय मन्ये॥

मन्य धातु का 'तृणं' प्राणिवर्जित कर्म है, सो उसमें विकल्प से चतुर्थी हो गई है। तिनका भी नहीं समझता, ऐसा कहने से स्पष्ट अनादर है। जिस कर्म से अनादर प्रतीत होता है, उसी में चतुर्थी होती है, साधारण कर्म में नहीं। इसलिए तृणाय में चतुर्थी हुई, त्वा में नहीं॥ दिवादिगण की मन धातु का यहां ग्रहण है॥ द्वितीया की प्राप्ति में यह विधान है॥

तृतीया

कर्तृकरणयोस्तृतीया॥२।३।१८॥

कर्तृकरणयोः ७।२॥ तृतीया १।१॥ स०—कर्ता च करणञ्च कर्तृकरणे, तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः॥ अनु०—अनभिहिते॥ अर्थः—अनभिहितयोः कर्तृकरणयो-

स्तृतीया विभक्तिर्भवति ॥ उदा०—कर्त्तरि—देवदत्तेन कृतम । यज्ञदत्तेन भुक्तम् । करणे—असिना छिनत्ति । दात्रेण लुनाति । अग्निना पचति ॥

भाषार्थः—अनभिहित [कर्त्तृकरणयोः] कर्त्ता और करण में [तृतीया] तृतीया विभक्ति होती है ॥ उदा०—देवदत्तेन कृतम् (देवदत्त के द्वारा किया गया) । यज्ञदत्तेन भुक्तम् । करण में—असिना छिनत्ति (तलवार के द्वारा काटता है) । दात्रेण लुनाति (दरांती के द्वारा काटता है) । अग्निना पचति (अग्नि के द्वारा पकाता है) ॥

देवदत्तेन कृतम् में देवदत्त अनभिहित कर्त्ता है, क्योंकि कृतम् में 'क्त' प्रत्यय कर्म में तयोरेव कृत्यक्त० (३।४।७०) से हुआ है । सो कृतम् क्रिया का समानाधिकरण कर्म से है, न कि कर्त्ता से । अतः कर्त्ता अनभिहित=अकथित=अनुक्त है, सो तृतीया हो गई । असिना छिनत्ति आदि में क्रिया का समानाधिकरण 'करण असि' से नहीं है अतः वह भी अनभिहित करण है । साधकतमं करणम् (१।४।४२) से करण संज्ञा, तथा स्वतन्त्रः कर्त्ता (१।४।५४) से कर्त्ता सज्ञा पूर्व कह चुके हैं ॥ अनभिहिते (२।३।१) सूत्र पर अनभिहित विषय में हम पर्याप्त समझा आये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी जानें ॥

यहाँ से 'तृतीया' की अनुवृत्ति २।३।२३ तक जायेगी ॥

तृतीया

सहयुक्तेऽप्रधाने ॥२।३।१९॥

सहयुक्ते ७।१॥ अप्रधाने ७।१॥ स०—सह शब्देन युक्तम् सहयुक्तम्, तस्मिन्, तृतीयातत्पुरुषः । न प्रधानम् अप्रधानं, तस्मिन्, नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—तृतीया ॥ अर्थः—सहार्थेन युक्तेऽप्रधाने तृतीया विभक्तिर्भवति ॥ उदा०—पुत्रेण सह आगतः पिता । पुत्रेण सह स्थूलः । पुत्रेण सह गोमान् । पुत्रेण सार्द्धम् ॥

भाषार्थः—[सहयुक्ते] सह के अर्थवाची शब्दों के योग में [अप्रधाने] अप्रधान में तृतीया विभक्ति हो जाती है ॥

उदा०—पुत्रेण सह आगतः पिता (पुत्र के साथ पिता आया) । पुत्रेण सह स्थूलः (पुत्र के साथ मोटा) । पुत्रेण सह गोमान (पुत्र के साथ गौवाला) । पुत्रेण सार्द्धम् (पुत्र के साथ) ॥

क्रिया-गुण-द्रव्य से दो पदार्थों का सम्बन्ध होने पर 'सह' का प्रयोग होता है । दोनों में से जिसका क्रियादि के साथ सम्बन्ध साक्षात् शब्द द्वारा कहा जाता है, उस को प्रधान माना जाता है । उदाहरणों में पिता का सम्बन्ध आगमनक्रिया, स्थूलता-गुण तथा गोद्रव्य के साथ शब्दों द्वारा प्रतिपादित है । इनके साथ पुत्र का सम्बन्ध

अनुमित है, अतः पुत्र अप्रधान है। सह के अर्थवाची के योग में तृतीया होती है। सो सार्द्धम् आदि के योग में भी हो गई। तथा जहाँ केवल सह का अर्थ रहे, सहार्थ शब्दों का योग न हो, वहाँ भी तृतीया हो जाती है। यथा—वृद्धो यूना ॥

येनाङ्गविकारः ॥२।३।२०॥

येन ३।१॥ अङ्गविकारः १।१॥ अङ्गम् अस्यास्तीति अङ्गः, अर्शआदिभ्योऽच् (५।२।१२७) इत्यनेन मतुबर्थे अच् प्रत्ययः ॥ स०—अङ्गस्य विकारः अङ्गविकारः, षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—तृतीया ॥ अर्थः—येन अङ्गेन अङ्गस्य=शरीरस्य विकारो लक्ष्यते तस्मात् तृतीया विभक्तिर्भवति ॥ उदा०—अक्ष्णा काणः, पादेन खञ्जः। पाणिना कुण्ठः ॥

भाषार्थः—[येन] जिस अङ्ग (शरीरावयव) के द्वारा [अङ्गविकारः] अङ्गी अर्थात् शरीर का विकार लक्षित हो, उससे तृतीया विभक्ति होती है ॥ अङ्ग अर्थात् शरीर के अवयव हैं जिस समुदाय में, वह शरीर (समुदाय) 'अङ्ग' कहलाया। येन अर्थात् जिस अङ्ग के द्वारा, यहाँ आक्षेप से द्वितीय अङ्ग=शरीरावयववाची लिया गया है। उदा०—अक्ष्णा काणः (आँख से काना)। पादेन खञ्जः (पैर से लंगड़ा)। पाणिना कुण्ठः (हाथ से लुञ्जा) ॥

उदाहरण में आँख शरीरावयव के द्वारा शरीर समुदाय का काणत्व विकार परिलक्षित हो रहा है, सो उसमें तृतीया हुई है। इसी प्रकार और उदाहरणों में भी समझें ॥

इत्थंभूतलक्षणे ॥२।३।२१॥

इत्थंभूतलक्षणे ७।१॥ लक्ष्यते अनेनेति लक्षणम् ॥ स०—कञ्चित् प्रकारं प्राप्तः इत्थम्भूतः, तस्य लक्षणम् इत्थम्भूतलक्षणम्, तस्मिन्, षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—तृतीया ॥ अर्थः—इत्थंभूतलक्षणे तृतीया विभक्तिर्भवति ॥ उदा०—अपि भवान् कमण्डलुना छात्रमद्राक्षीत्। अपि भवान् मेखलया ब्रह्मचारिणमद्राक्षीत् ॥

भाषार्थः—[इत्थंभूतलक्षणे] इत्थंभूत का जो लक्षण उसमें तृतीया विभक्ति होती है ॥ उदा०—अपि भवान् कमण्डलुना छात्रमद्राक्षीत् (क्या आपने कमण्डलु लिये हुए छात्र को देखा)। अपि भवान् मेखलया ब्रह्मचारिणमद्राक्षीत (क्या आपने मेखला-वाले छात्र को देखा) ॥

उदाहरण में मनुष्यत्व सामान्य है, उसमें छात्रत्व और ब्रह्मचारित्व प्रकार है, अर्थात् छात्रत्व प्रकार=धर्म को प्राप्त हुआ मनुष्य, ब्रह्मचारित्व प्रकार को प्राप्त हुआ मनुष्य, यह इत्थंभूत है। इस इत्थंभूत का कमण्डलु, और मेखला लक्षण है,

अर्थात् कमण्डलु से छात्र लक्षित किया जा रहा है, और मेखला से ब्रह्मचारी । अतः उनमें तृतीया हो गई है ॥ भू प्राप्तौ चुरादिगण धातु से क्त प्रत्यय होकर भूत शब्द बना है, अतः भूत का अर्थ प्राप्त है । इत्थम् में इदमस्थमुः (५।३।२४) से थमु प्रत्यय हुआ है ॥

द्वितीया, तृतीया

संज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि ॥२।३।२२॥

संज्ञः ६।१॥ अन्यतरस्याम् अ० ॥ कर्मणि ७।१॥ अनु०—तृतीया, अनभिहिते॥ **अर्थः**—सम्पूर्वस्य ज्ञाधातोरनभिहिते कर्मणि कारके तृतीया विभक्तिर्भवति विकल्पेन॥ उदा०—मात्रा संजानीते बालः, मातरं सञ्जानीते । पित्रा संजानीते, पितरं सं-नीते ॥

भाषार्थः—[संज्ञः] सम्पूर्वक ज्ञा धातु के अनभिहित [कर्मणि] कर्मकारक में [अन्यतरस्याम्] विकल्प से तृतीया विभक्ति होती है ॥ पक्ष में यथाप्राप्त द्वितीया विभक्ति होती है ॥

उदा०—मात्रा संजानीते बालः (बालक माता को पहचानता है), मातरं सञ्जानीते । पित्रा संजानीते, पितरं संजानीते ॥

मातृ शब्द संजानीते का कर्म है । सो उसमें द्वितीया तथा तृतीया विभक्ति हो गई हैं ॥ संप्रतिभ्याम्० (१।३।४६) से संजानीते में आत्मनेपद हुआ है ॥

तृतीया

हेतौ ॥२।३।२३॥

हेतौ ७।१॥ अनु०—तृतीया ॥ **अर्थः**—हेतुवाचिशब्दे तृतीया विभक्तिर्भवति ॥ उदा०—विद्यया यशः । सत्सङ्गेन बुद्धिः । धनेन कुलम् ॥

भाषार्थः—[हेतौ] हेतुवाची शब्द में तृतीया विभक्ति होती है । जिससे किसी कार्य की सिद्धि की जाये वह 'हेतु' होता है ॥

उदा०—विद्यया यशः (विद्या के द्वारा यश प्राप्त हुआ) । सत्सङ्गेन बुद्धिः (सत्सङ्ग के द्वारा बुद्धि प्राप्त हुई) । धनेन कुलम् (धन के द्वारा कुल स्थित है) ॥ उदाहरण में विद्या के द्वारा यश प्राप्त हुआ, अतः वह हेतु है । इसी प्रकार अन्यों में भी समझें ॥ पूर्ववत् 'विद्या टा' आकर आङि चापः (७।३।१०५) से एत्व होकर विद्ये आ, एचोऽयवायावः (६।१।७५) लगकर विद्यया बन गया ॥ शेष पूर्ववत् हैं ॥

यहाँ से 'हेतौ' की अनुवृत्ति २।३।२७ तक जायेगी ॥

अकर्त्तर्यृणे पञ्चमी ॥२।३।२४॥

अकर्त्तरि ७।१॥ ऋणे ७।१॥ पञ्चमी १।१॥ अनु०—हेतौ ॥ अर्थः—ऋणे वाच्ये कर्तृ रहिते हेतौ पञ्चमी विभक्तिर्भवति ॥ उदा०—शताद् बद्धः । सहस्राद् बद्धः ॥

भाषार्थः—[अकर्त्तरि] कर्तृभिन्न हेतुवाची शब्द में [ऋणे] ऋण वाच्य होने पर [पञ्चमी] पञ्चमी विभक्ति होती है ॥

उदा०—शताद् बद्धः (सौ रुपये के ऋण से बँध गया, अर्थात् मालिक ने उसे नौकर बना लिया) । सहस्राद् बद्धः ॥

उसके बन्धन का हेतु सौ रुपये हैं, सो हेतुवाची होने से पञ्चमी हो गई है ॥ पूर्व सूत्र से हेतु में तृतीया प्राप्त थी, पञ्चमी हो गई ॥

यहाँ से 'पञ्चमी' की अनुवृत्ति २।३।२५ तक जाती है ॥

विभाषा गुणेऽस्त्रियाम् ॥२।३।२५॥

विभाषा १।१॥ गुणे ७।१॥ अस्त्रियाम् ७।१॥ स०—न स्त्री अस्त्री, तस्याम् अस्त्रियाम्, नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—हेतौ, पञ्चमी ॥ अर्थः—अस्त्रियाम् = स्त्रीलिङ्ग विहाय पुँल्लिङ्गनपुंसकलिङ्गे वर्त्तमानो यो हेतुवाची गुणवाचकशब्दः,तस्मिन् विकल्पेन पञ्चमी विभक्तिर्भवति, पक्षे तृतीया भवति ॥ पूर्वेण नित्यं तृतीया प्राप्ता विकल्प्यते॥ उदा०—जाड्याद् बद्धः, जाड्येन बद्धः । पाण्डित्यान् मुक्तः, पाण्डित्येन मुक्तः ॥

भाषार्थः—[अस्त्रियाम्] स्त्रीलिङ्ग को छोड़कर अर्थात् पुँल्लिङ्ग नपुंसकलिङ्ग में वर्त्तमान जो हेतुवाची [गुणे] गुणवाचक शब्द, उसमें [विभाषा] विकल्प से पञ्चमी विभक्ति होती है ॥

उदा०—जाड्याद् बद्धः (मूर्खता से बन्धन में फँस गया), जाड्येन बद्धः । पाण्डित्यान् मुक्तः (पाण्डित्य के कारण मुक्त हो गया), पाण्डित्येन मुक्तः ॥ जाड्य वा पाण्डित्य नपुंसकलिङ्ग में वर्त्तमान गुणवाची शब्द हैं, तथा बन्धन वा मुक्त होने के हेतु हैं, सो पञ्चमी विभक्ति हो गई । नित्य तृतीया हेतौ (२।३।२३ से) प्राप्त थी, पञ्चमी विकल्प से कर दी । अतः पञ्चमी होने के पश्चात् पक्ष में हेतौ (२।३।२३) सूत्र से प्राप्त तृतीया भी हो गई ॥

षष्ठी हेतुप्रयोगे ॥२।३।२६॥

षष्ठी १।१॥ हेतुप्रयोगे ७।१॥ स०—हेतोः प्रयोगः हेतुप्रयोगः, तस्मिन्, षष्ठी-

तत्पुरुषः ॥ अनु०—हेतौ ॥ अर्थः—हेतुशब्दस्य प्रयोगे हेतौ द्योत्ये षष्ठी विभक्तिर्भवति ॥ उदा०—अन्नस्य हेतोर्धनिकुले वसति ॥

भाषार्थः—[हेतुप्रयोगे] हेतु शब्द के प्रयोग में, तथा जिससे हेतु द्योतित हो रहा हो, उस शब्द में [षष्ठी] षष्ठी विभक्ति होती है ॥

उदा०—अन्नस्य हेतोर्धनिकुले वसति (अन्न के कारण से धनवान् के कुल में वास करता है) । अन्न हेतु है, सो उसमें षष्ठी हो गई है ॥

यहाँ से 'षष्ठी हेतुप्रयोगे' की अनुवृत्ति २।३।२७ तक जायेगी ॥

सर्वनाम्नस्तृतीया च ॥२।३।२७॥

सर्वनाम्नः ६।१॥ तृतीया १।१॥ च अ० ॥ अनु०—षष्ठी, हेतुप्रयोगे, हेतौ ॥ अर्थः—सर्वनाम्नो हेतुशब्दस्य प्रयोगे हेतौ द्योत्ये तृतीया विभक्तिर्भवति, चकारात् षष्ठी च ॥ उदा०—कस्य हेतोर्वसति, केन हेतुना वसति । यस्य हेतोर्वसति, येन हेतुना वसति ॥

भाषार्थः—हेतु शब्द के प्रयोग में, तथा हेतु के विशेषणवाची [सर्वनाम्नः] सर्वनामसंज्ञक शब्द के प्रयोग में, हेतु द्योतित होने पर [तृतीया] तृतीया विभक्ति होती है, [च] चकार से षष्ठी विभक्ति भी होती है ॥

यहाँ पर निमित्तकारणहेतुषु सर्वासां प्रायदर्शनम् इस वार्त्तिक से प्रायः करके सर्वनाम विशेषणवाची शब्द प्रयुक्त होने पर, निमित्त, कारण, हेतु का प्रयोग हो तो सब विभक्तियाँ होती हैं ॥

उदा०—कस्य हेतोर्वसति (किस हेतु से बसता है), केन हेतुना वसति । यस्य हेतोर्वसति (जिस हेतु से बसता है), येन हेतुना वसति ॥

अपादाने पञ्चमी ॥२।३।२८॥

अपादाने ७।१॥ पञ्चमी १।१॥ अनु०—अनभिहिते ॥ अर्थः—अनभिहितेऽपादाने कारके पञ्चमी विभक्तिर्भवति ॥ उदा०—वृक्षात् पर्णानि पतन्ति । ग्रामाद् आगच्छति ॥

भाषार्थः—अनभिहित [अपादाने] अपादान कारक में [पञ्चमी] पञ्चमी विभक्ति होती है ॥ ध्रुवमपायेऽपा० (१।४।२४) से अपादान संज्ञा हुई है ॥ उदा०—वृक्षात् पर्णानि पतन्ति (वृक्ष से पत्ते गिरते हैं) । ग्रामाद् आगच्छति ॥ उदाहरण में आगच्छति क्रिया से अपादान अनभिहित है, अतः पञ्चमी हुई है ॥

यहाँ से 'पञ्चमी' की अनुवृत्ति २।३।३५ तक जायेगी ॥

अन्यारादितरर्तेदिक्छब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते ॥२।३।२९॥

अन्या ······हियुक्ते ७।१॥ स०—अन्यश्च आराच्च इतरश्च ऋते च दिक्शब्दश्च अञ्चूत्तरपदश्च आच्च आहिश्चेति अन्यारादितरर्तेदिक्छब्दाञ्चूत्तरपदाजाहयः, तैर्युक्तम् अन्या······ ·· ······जाहियुक्तम्, तस्मिन्, द्वन्द्वगर्भस्तृतीयातत्पुरुषः ॥ अनु०—पञ्चमी ॥ अर्थः—अन्य, आरात्, इतर, ऋते, दिक्शब्द, अञ्चूत्तरपद, आच्, आहि इत्येतैर्योगे पञ्चमी विभक्तिर्भवति ॥ उदा०—अन्यो देवदत्तात् । अन्य इत्यर्थग्रहणं, तेन पर्यायप्रयोगेऽपि भवति—भिन्नो देवदत्तात्, अर्थान्तरं देवदत्तात् । आरात् यज्ञदत्तात् । इतरो देवदत्तात् । ऋते यज्ञदत्तात् । पूर्वो ग्रामात् पर्वतः, उत्तरो ग्रामात् । पूर्वो ग्रीष्मात् वसन्तः । अञ्चूत्तरपदे—प्राग् ग्रामात्, प्रत्यग् ग्रामात् । आच्—दक्षिणा ग्रामात् । उत्तरा ग्रामात् । आहि—दक्षिणाहि ग्रामात् । उत्तराहि ग्रामात् ॥

भाषार्थः—[अन्यारादित······युक्ते] अन्य, आरात्, इतर, ऋते, दिक्शब्द, अञ्चूत्तरपद, आच्प्रत्ययान्त तथा आहिप्रत्ययान्त शब्दों के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है ॥

उदा०—अन्यो देवदत्तात्, भिन्नो देवदत्तात् (देवदत्त से भिन्न), अर्थान्तरं देवदत्तात् । आरात् देवदत्तात् (देवदत्त से दूर या समीप) । आरात् यज्ञदत्तात् । इतरो देवदत्तात (देवदत्त से इतर=भिन्न) । ऋते यज्ञदत्तात् (यज्ञदत्त के बिना) । पूर्वो ग्रामात् पर्वतः (ग्राम से पूर्व पर्वत), उत्तरो ग्रामात् । पूर्वो ग्रीष्माद् वसन्तः (ग्रीष्म से पूर्व वसन्त) । अञ्चूत्तरपद में—प्राग् ग्रामात् (ग्राम से पूर्व), प्रत्यग् ग्रामात् (ग्राम से पश्चिम) । आच्—दक्षिणा ग्रामात् (गाँव से दक्षिण), उत्तरा ग्रामात् । दक्षिणाहि ग्रामात् (ग्राम से दक्षिण) । उत्तराहि ग्रामात् ॥

प्र, प्रति पूर्वक अञ्चु धातु से ऋत्विग्दधृग्० (३।२।५९) से क्विन् प्रत्यय होकर दिक्शब्देभ्यः० (५।३।२७) से अस्ताति, तथा अञ्चेर्लुक् (५।३।३०) से उसका लुक् होकर प्राक् और प्रत्यक् शब्द बने हैं । दक्षिणा में दक्षिणादाच् (५।३।३६), तथा उत्तरा में उत्तराच्च (५।३।३८) से आच् प्रत्यय हुआ है । आहि च दूरे (५।३।३७) से दक्षिणाहि आदि में आहि प्रत्यय हुआ है ॥

षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन ॥२।३।३०॥

षष्ठी १।१॥ अतसर्थप्रत्ययेन ३।१॥ स०—अतसोऽर्थः अतसर्थः, षष्ठीतत्पुरुषः, अतसर्थे प्रत्ययः अतसर्थप्रत्ययः, तेन, सप्तमीतत्पुरुषः ॥ अर्थः—अतसर्थप्रत्ययेन

युक्ते षष्ठीविभक्तिर्भवति ॥ उदा०—दक्षिणतो ग्रामस्य । उत्तरतो ग्रामस्य । पुरो ग्रामस्य । पुरस्तात् ग्रामस्य । उपरि ग्रामस्य । उपरिष्टात् ग्रामस्य ॥

भाषार्थः—[अतसर्थप्रत्ययेन] अतसर्थ प्रत्यय के योग में [षष्ठी] षष्ठी विभक्ति होती है ॥ अतसुच् के अर्थ में विहित, दक्षिणोत्तराभ्यामतसुच् (५।३।२८) के अधिकार में कहे हुए प्रत्यय अतसर्थ प्रत्यय कहलाते हैं ॥

उदा०—दक्षिणतो ग्रामस्य (ग्राम के दक्षिण में) । उत्तरतो ग्रामस्य । पुरो ग्रामस्य (ग्राम के पूर्व में) । पुरस्तात् ग्रामस्य । उपरि ग्रामस्य (ग्राम के ऊपर) । उपरिष्टात् ग्रामस्य ॥

दक्षिणतः, उत्तरतः में दक्षिणोत्तराभ्यामतसुच् (५।३।२८) से अतसुच् प्रत्यय हुआ है । पुरः में पूर्वाधरावरा० (५।३।३९) से पूर्व को पुर् आदेश, तथा असि प्रत्यय अतसर्थ में हुआ है । दिक्शब्देभ्यः० (५।३।२७) से पुरस्तात् में अस्ताति प्रत्यय हुआ है । उपर्युपरिष्टात् (५।३।३१) से ऊर्ध्व को उप भाव तथा रिल् रिष्टातिल् प्रत्यय उपरि उपरिष्टात् में हुए हैं । इन सब के योग में षष्ठी हो गई है ॥

एनपा द्वितीया ॥२।३।३१॥

एनपा ३।१॥ द्वितीया १।१॥ अर्थः—एनपप्रत्ययान्तेन योगे द्वितीया विभक्तिर्भवति ॥ पूर्वेण षष्ठी प्राप्ता द्वितीया विधीयते ॥ उदा०—दक्षिणेन ग्रामम् । उत्तरेण ग्रामम् ॥

भाषार्थः—[एनपा] एनपप्रत्ययान्त शब्दों के योग में [द्वितीया] द्वितीया विभक्ति होती है ॥ एनबन्यतरस्यामदूरे० (५।३।३५) से एनप् प्रत्यय का विधान है । एनप् के अतसर्थ प्रत्यय होने से पूर्व सूत्र से षष्ठी प्राप्त थी, द्वितीया का विधान कर दिया ॥

उदा०—दक्षिणेन ग्रामम् (ग्राम से दक्षिण) । उत्तरेण ग्रामम् ॥

पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम् ॥२।३।३२॥

पृथग्विनानानाभिः ३।३॥ तृतीया १।१॥ अन्यतरस्याम् अ० ॥ स०—पृथक् च विना च नाना च पृथग्विनानानाः, तैः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—पञ्चमी ॥ अर्थः—पृथक्, विना, नाना इत्येतैर्योगे तृतीया विभक्तिर्भवति अन्यतरस्यां च ॥ उदा०—पृथक् ग्रामेण, पृथक् ग्रामात् । विना घृतेन विना घृतात् । नाना देवदत्तेन, नाना देवदत्तात् ॥

भाषार्थः—[पृथग्विनानानाभिः] पृथक्, विना, नाना इन शब्दों के योग में

[तृतीया] तृतीया विभक्ति [अन्यतरस्याम्] विकल्प से होती है, पक्ष में पञ्चमी भी होती हैं ॥

उदा०—पृथक् ग्रामेण (ग्राम से पृथक्), पृथक् ग्रामात् । विना घृतेन (बिना घी के), विना घृतात् । नाना देवदत्तेन (देवदत्त से भिन्न), नाना देवदत्तात् ॥

यहाँ से 'तृतीया' की अनुवृति २।३।३३ तक जायेगी ॥

तृतीया पञ्चमी

करणे च स्तोकाल्पकृच्छ्रकतिपयस्यासत्त्ववचनस्य ॥२।३।३३॥

करणे ७।१॥ च अ० ॥ स्तोकाल्पकृच्छ्रकतिपयस्य ६।१॥ असत्त्ववचनस्य ६।१॥ स०—स्तोकश्च अल्पश्च कृच्छ्रश्च कतिपयश्च स्तोकाल्पकृच्छ्रकतिपयम्, तस्य, समाहारो द्वन्द्वः । सत्त्वस्य वचनं सत्त्ववचनम्, न सत्त्ववचनम् असत्त्ववचनम्, तस्य, नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—तृतीया, पञ्चमी ॥ अर्थः—स्तोक, अल्प, कृच्छ्र, कतिपय इत्येतेभ्योऽसत्त्ववचनेभ्यः करणे कारके तृतीयापञ्चम्यौ विभक्ती भवतः ॥ उदा०—स्तोकान् मुक्तः, स्तोकेन मुक्तः । अल्पान् मुक्तः, अल्पेन मुक्तः । कृच्छ्रान् मुक्तः, कृच्छ्रेण मुक्तः । कतिपयान् मुक्तः, कतिपयेन मुक्तः ॥

भाषार्थः—[स्तोकाल्पकृच्छ्रकतिपयस्य] स्तोक, अल्प, कृच्छ्र, कतिपय इन [असत्त्ववचनस्य] असत्त्ववाची=अद्रव्यवाची शब्दों से [करणे] करण कारक में तृतीया [च] और पञ्चमी विभक्ति होती हैं ॥ उदा०—स्तोकान् मुक्तः, स्तोकेन मुक्तः । अल्पकान् मुक्तः, अल्पेन मुक्तः । कृच्छ्रान् मुक्तः, कृच्छ्रेण मुक्तः । कतिपयान् मुक्तः (कुछ से छूट गया), कतिपयेन मुक्तः ॥

करण में तृतीया (२।३।१८) से प्राप्त ही थी, पञ्चमी का ही यहाँ विधान किया है ॥ स्तोकान् आदि में त् को न् यरोऽनुनासिके० (८।४।४४) से हुआ है ॥

पञ्चमी षष्ठी

दूरान्तिकार्थैः षष्ठ्यन्यतरस्याम् ॥२।३।३४॥

दूरान्तिकार्थैः ३।३॥ षष्ठी १।१॥ अन्यतरस्याम् अ० ॥ स०—दूरश्च अन्तिकश्च दूरान्तिकौ, तौ अर्थौ येषां ते दूरान्तिकार्थाः, तैः, द्वन्द्वगर्भबहुव्रीहिः ॥ अनु०—पञ्चमी ॥ अर्थः—दूरार्थैः अन्तिकार्थैः= समीपार्थैः शब्दैः योगे षष्ठीविभक्ति-र्विकल्पेन भवति, पक्षे पञ्चमी च ॥ उदा०—दूरं ग्रामात्, दूरं ग्रामस्य । विप्रकृष्टं ग्रामात्, विप्रकृष्टं ग्रामस्य । अन्तिक—अन्तिकं ग्रामात्, अन्तिकं ग्रामस्य । समीपं ग्रामात्, समीपं ग्रामस्य । अभ्याशं ग्रामात्, अभ्याशं ग्रामस्य ॥

भाषार्थः—[दूरान्तिकार्थैः] दूर अर्थवाले, तथा समीप अर्थवाले शब्दों के, योग में [षष्ठी] षष्ठी विभक्ति [अन्यतरस्याम्] विकल्प से होती है, पक्ष में पञ्चमी भी होती हैं ॥

उदा०—दूरं ग्रामात् (ग्राम से दूर), दूरं ग्रामस्य । विप्रकृष्टं ग्रामात्, विप्रकृष्टं ग्रामस्य ॥ अन्तिकं ग्रामात् (ग्राम से समीप), अन्तिकं ग्रामस्य। समीपं ग्रामात्, समीपं ग्रामस्य । अभ्याशं ग्रामात्, अभ्याशं ग्रामस्य ॥

यहाँ से 'षष्ठ्यन्तरस्याम्' की अनुवृत्ति २।३।३५ तक जायेगी ॥

सप्तमी षष्ठी **दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च ॥२।३।३५॥** द्वितीया

दूरान्तिकार्थेभ्यः ५।३॥ द्वितीया १।१॥ च अ० ॥ स०—पूर्वसूत्रानुसारमेव दूरान्तिकार्थेभ्य इत्यत्र समासः ॥ अनु०—षष्ठ्यन्यतरस्याम्, पञ्चमी ॥ अर्थः—दूरान्तिकार्थेभ्यः शब्देभ्यः द्वितीया विभक्तिर्भवति[1], चकारात् षष्ठी च भवति विकल्पेन । अतः पक्षे पञ्चम्यपि भवति ॥ एवं विभक्तित्रयं सिद्धं भवति ॥ उदा०—दूरं ग्रामस्य, दूरस्य ग्रामस्य, दूराद् ग्रामस्य । विप्रकृष्टं विप्रकृष्टस्य विप्रकृष्टाद् वा ग्रामस्य ॥ अन्तिकं अन्तिकस्य अन्तिकाद् वा ग्रामस्य । समीपं समीपस्य समीपाद् वा ग्रामस्य ॥

भाषार्थः—[दूरान्तिकार्थेभ्यः] दूर अर्थवाले तथा समीप अर्थवाले शब्दों से [द्वितीया] द्वितीया विभक्ति होती है, [च] और चकार से षष्ठी भी होती है, तथा अन्यतरस्याम् की अनुवृत्ति होने से पक्ष में पञ्चमी भी होती है ॥ इस प्रकार तीव रूप बनते हैं । पूर्व सूत्र में दूर अन्तिक के योग में षष्ठी विकल्प से कही थी, तथा यहाँ दूरान्तिक शब्दों से द्वितीयादि कहा हैं, यह भेद है ॥

यहाँ से 'दूरान्तिकार्थेभ्यः' की अनुवृत्ति २।३।३६ तक जायेगी ॥

सप्तम्यधिकरणे च ॥२।३।३६॥ सप्तमी

सप्तमी १।१॥ अधिकरणे ७।१॥ च अ० ॥ अनु०—दूरान्तिकार्थेभ्यः, अनभिहिते ॥ अर्थः—अनभिहितेऽधिकरणे सप्तमी विभक्तिर्भवति, चकाराद् दूरान्तिकार्थेभ्यश्च ॥ उदा०—कटे आस्ते । शकटे आस्ते । स्थाल्यां पचति । दूरान्तिकार्थेभ्यः—दूरे ग्रामस्य, विप्रकृष्टे ग्रामस्य । अन्तिके ग्रामस्य, अभ्याशे ग्रामस्य ॥

भाषार्थः—अनभिहित [अधिकरणे] अधिकरण में [सप्तमी] सप्तमी विभक्ति होती है, तथा [च] चकार से दूरान्तिकार्थक शब्दों से भी होती है ॥ आधारोऽधिकरणम् (१।४।४५) से अधिकरण संज्ञा कही है । उस अधिकरण में यहाँ सप्तमी विभक्ति कह दी है ॥

---

१. यहां काशिकादियों में षष्ठी की अनुवृत्ति न लाकर तृतीया का समुच्चय किया है । सो प्रयोगाधीन जानन चाहिये ॥

उदा०—कटे आस्ते (चटाई पर बैठता है)। शकटे आस्ते (गाड़ी में बैठता है)। स्थाल्यां पचति (बटलोई में पकाता है)। दूरान्तिकार्थों से—दूरे ग्रामस्य, विप्रकृष्टे ग्रामस्य। अन्तिके ग्रामस्य, अभ्याशे ग्रामस्य।

यहाँ से 'सप्तमी' की अनुवृत्ति २।३।४१ तक जायेगी॥

सप्तमी

यस्य च भावेन भावलक्षणम् ॥२।२।३७॥

यस्य ६।१॥ च अ० ॥ भावेन ३।१॥ भावलक्षणम् १।१॥ स०—भावस्य लक्षणम् भावलक्षणम्, षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—सप्तमी ॥ अर्थः—यस्य च भावेन =क्रियया भावः=क्रियान्तरं लक्ष्यते, तस्मात् सप्तमी विभक्तिर्भवति ॥ उदा०—गोषु दुह्यमानासु गतः। दुग्धासु आगतः। अग्निषु हूयमानेषु गतः। हुतेष्वागतः॥

भाषार्थः—[यस्य] जिसकी [भावेन] क्रिया से कोई [भावलक्षणम्] दूसरी क्रिया लक्षित की जाय, उसमें [च] भी सप्तमी विभक्ति होती है॥ इस सूत्र में भाव का अर्थ क्रिया है॥

उदा०—गोषु दुह्यमानासु गतः (गौओं के दोहनकाल में गया था)। दुग्धासु आगतः (दोहनकाल के पश्चात् आ गया)। अग्निषु हूयमानेषु गतः (यज्ञकाल में गया था)। हुतेष्वागतः (यज्ञकाल के बाद आ गया)॥

उदाहरण में गौ की दोहनक्रिया से गमनक्रिया (जाना) लक्षित की जा रही है, अतः उसमें सप्तमी हो गई है। इसी प्रकार अन्य उदाहरणों में भी समझें॥

यहाँ से 'इस सारे सूत्र' की अनुवृत्ति २।३।३८ तक जायेगी॥

षष्ठी, सप्तमी

षष्ठी चानादरे ॥२।३।३८॥

षष्ठी १।१॥ च अ० ॥ अनादरे ७।१॥ स०—न आदरः अनादरः, तस्मिन् अनादरे, नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—यस्य च भावेन भावलक्षणम्, सप्तमी ॥ अर्थः—यस्य क्रियया क्रियान्तरं लक्ष्यते, ततोऽनादरे गम्यमाने षष्ठी विभक्तिर्भवति, चकारात् सप्तमी च ॥ उदा०—रुदतः प्राव्राजीत्, रुदति प्राव्राजीत्। क्रोशतः प्राव्राजीत्, क्रोशति प्राव्राजीत्॥

भाषार्थः—जिसकी क्रिया से क्रियान्तर लक्षित हो, उसमें [अनादरे] अनादर गम्यमान होने पर [षष्ठी] षष्ठी, तथा [च] चकार से सप्तमी विभक्ति भी होती है॥

उदा०—रुदतः प्राव्राजीत् (रोते हुए को छोड़कर बिना परवाह किये परिव्राजक बन गया), रुदति प्राव्राजीत्। क्रोशतः प्राव्राजीत् (क्रोध करते हुये को छोड़कर

परिव्राजक बन गया), क्रोशति प्राव्राजीत् ॥ रुदन वा क्रोशन क्रिया से क्रियान्तर (उसका जाना) लक्षित हो रहा है। तथा अनादर भी प्रकट हो रहा है, सो षष्ठी सप्तमी विभक्ति हो गई ॥

यहाँ से 'षष्ठी' की अनुवृत्ति २।३।४१ तक जायेगी ॥

षष्ठी सप्तमी

स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्च ॥२।३।३९॥

स्वामीश्व ... प्रसूतैः ३।३॥ च अ० ॥ स०—स्वामी च ईश्वरश्च अधिपतिश्च दायादश्च साक्षी च प्रतिभूश्च प्रसूतश्चेति स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूताः, तैः......,इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—षष्ठी, सप्तमी ॥ अर्थः—स्वामिन्, ईश्वर, अधिपति, दायाद, साक्षिन्, प्रतिभू, प्रसूत इत्येतैः शब्दैर्योगे षष्ठीसप्तम्यौ विभक्ती भवतः ॥ उदा०—गवां स्वामी, गोषु स्वामी। गवाम् ईश्वरः, गोषु ईश्वरः। गवाम् अधिपतिः, गोषु अधिपतिः। गवां दायादः, गोषु दायादः। गवां साक्षी, गोषु साक्षी। गवां प्रतिभूः, गोषु प्रतिभूः। गवां प्रसूतः, गोषु प्रसूतः ॥

भाषार्थः—[स्वामी ......प्रसूतैः] स्वामी, ईश्वर, अधिपति, दायाद, साक्षी, प्रतिभू, प्रसूत इन शब्दों के योग में [च] भी षष्ठी और सप्तमी विभक्ति होती हैं ॥

उदा०—गवां स्वामी (गौओं का स्वामी), गोषु स्वामी। गवाम् ईश्वरः (गौओं का मालिक), गोषु ईश्वरः। गवाम् अधिपतिः (गौओं का मालिक), गोषु अधिपतिः। गवां दायादः (गोरूपी पैतृक धन का अधिकारी), गोषु दायादः। गवां साक्षी (गौओं का साक्षी), गोषु साक्षी। गवां प्रतिभूः (गौओं का जामिन), गोषु प्रतिभूः। गवां प्रसूतः (गौओं का बछड़ा), गोषु प्रसूतः ॥

आयुक्तकुशलाभ्यां चासेवायाम् ॥२।३।४०॥ षष्ठी, सप्तमी

आयुक्तकुशलाभ्यां ३।२॥ च अ० ॥ आसेवायाम् ७।१॥ स०—आयुक्तश्च कुशलश्च आयुक्तकुशलौ, ताभ्याम्......,इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥अनु०—षष्ठी, सप्तमी ॥ अर्थः—आसेवायां गम्यमानायाम् आयुक्त कुशल इत्येताभ्यां शब्दाभ्यां योगे षष्ठीसप्तम्यौ विभक्ती भवतः ॥ उदा०—आयुक्तः कटकरणस्य, आयुक्तः कटकरणे। कुशलः कटकरणस्य, कुशलः कटकरणे ॥

भाषार्थः—[आयुक्तकुशलाभ्याम्] आयुक्त तथा कुशल शब्दों के योग में [च] भी [आसेवायाम्] आसेवा=तत्परता गम्यमान हो, तो षष्ठी सप्तमी विभक्ति हो जाती हैं ॥

उदा०—आयुक्तः कटकरणस्य (चटाई बनाने में लगा है), आयुक्तः कटकरणे। कुशलः कटकरणस्य (चटाई बनाने में होशियार है), कुशलः कटकरणे ॥

षष्ठी, सप्तमी

यतश्च निर्द्धारणम् ॥२।३।४१॥

यतः अ० ॥ च अ० ॥ निर्द्धारणम् १।१॥ अनु०—षष्ठी, सप्तमी ॥ अर्थः—यतः=यस्मात् निर्द्धारणम् (जातिगुणक्रियाभिः समुदायाद् एकस्य पृथक्करणम्) भवति, तस्मात् षष्ठीसप्तम्यौ विभक्ती भवतः ॥ उदा०—मनुष्याणां क्षत्रियः शूरतमः, मनुष्येषु क्षत्रियः शूरतमः। गवां कृष्णा सम्पन्नक्षीरतमा गोषु कृष्णा सम्पन्नक्षीरतमा। अध्वगानां धावन्तः शीघ्रतमाः, अध्वगेषु धावन्तः शीघ्रतमाः ॥

भाषार्थः—[यतः] जिससे [निर्द्धारणम्] निर्द्धारण हो, उसमें [च] भी षष्ठी सप्तमी विभक्ति होती हैं ॥ उदाहरणों में मनुष्य गौ तथा दौड़ते हुओं से निर्द्धारण किया जा रहा है, अतः षष्ठी सप्तमी विभक्ति हो गई हैं ॥

यहाँ से 'यतश्च निर्द्धारणम्' की अनुवृत्ति २।३।४२ तक जायेगी ॥

पञ्चमी

पञ्चमी विभक्ते ॥२।३।४२॥

पञ्चमी १।१॥ विभक्ते ७।१॥ अनु०—यतश्च निर्द्धारणम् ॥ अर्थः—यस्मिन् निर्द्धारणे विभागो भवति, तत्र पञ्चमी विभक्तिर्भवति ॥ उदा०—माथुराः पाटलिपुत्रकेभ्यः सुकुमारतराः। पाटलिपुत्रकेभ्यः आढ्यतराः ॥

भाषार्थः—जिस निर्द्धारण में [विभक्ते] विभाग किया जाये, उसमें [पञ्चमी] पञ्चमी विभक्ति हो जाती है ॥ ऊपर के सूत्र का यह अपवाद है ॥

उदा०—माथुराः पाटलिपुत्रकेभ्यः सुकुमारतराः (मथुरा के लोग पटनावालों से अधिक सुकुमार हैं)। पाटलिपुत्रकेभ्यः आढ्यतराः ॥

निर्द्धारण के आश्रय तथा निर्धार्यमाण का विभाग होने पर ही निर्धारण होता है। फिर भी इस सूत्र में 'विभक्ते' ग्रहण का प्रयोजन यह है कि जिस निर्धारणाश्रय में सदा विभाग ही होता है (अन्तर्भाव कभी नहीं होता), इस प्रकार अवधारण हो सके। जैसे उदाहरण में मथुरावालों से पटनावाले सर्वथा विभक्त हैं। परन्तु पूर्व सूत्र के उदाहरणों में गौ आदि में कृष्णा आदि का गोत्व आदि के रूप में अन्तर्भाव भी होता है ॥

सप्तमी

साधुनिपुणाभ्यामर्चायां सप्तम्यप्रतेः ॥२।३।४३॥

साधुनिपुणाभ्याम् ३।२॥ अर्चायां ७।१॥ सप्तमी १।१॥ अप्रतेः ६।१॥ स०—साधुश्च निपुणश्च साधुनिपुणौ, ताभ्याम्......,इतरेतरयोगद्वन्द्वः। न प्रतिः अप्रतिः,

तस्य ·····,नञ्तत्पुरुषः ॥ **अर्थः**—अर्चायाम् =सत्कारे गम्यमाने साधुनिपुणशब्दाभ्यां योगे सप्तमी विभक्तिर्भवति, न चेत् प्रतेः प्रयोगो भवेत् ॥ **उदा०** —मातरि साधुः, पितरि साधुः । मातरि निपुणः, पितरि निपुणः ॥

भाषार्थः—[अर्चायाम्] **अर्चा =सत्कार गम्यमान होने पर [साधुनिपुणाभ्याम्] साधु निपुण शब्दों के योग में [अप्रतेः] प्रति का प्रयोग न हो, तो [सप्तमी] सप्तमी विभक्ति होती है ॥**

उदा०—मातरि साधुः (माता के प्रति साधु है), पितरि साधुः । मातरि निपुणः (माता के प्रति कुशल है), पितरि निपुणः ॥

यहाँ से 'सप्तमी' की अनुवृत्ति २।३।४५ तक जायेगी ॥

तृतीया, सप्तमी

प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च ॥२।३।४४॥

प्रसितोत्सुकाभ्यां ३।२॥ तृतीया १।१॥ च अ० ॥ **स०**—प्रसितश्च उत्सुकश्च प्रसितोत्सुकौ, ताभ्यां—,इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ **अनु०**—सप्तमी ॥ **अर्थः**—प्रसित उत्सुक इत्येताभ्यां शब्दाभ्यां योगे तृतीया विभक्तिर्भवति, चकारात् सप्तमी च ॥ **उदा०**—केशैः प्रसितः, केशेषु प्रसितः । केशैरुत्सुकः, केशेषूत्सुकः ॥

भाषार्थः—[प्रसितोत्सुकाभ्याम्] **प्रसित उत्सुक इन शब्दों के योग में [तृतीया] तृतीया विभक्ति होती है, [च] तथा चकार से सप्तमी भी होती है ॥** उदा०—**केशैः प्रसितः (केशों को सम्हालने में लगा रहनेवाला), केशेषु प्रसितः । केशैरुत्सुकः (केशों के लिये उत्सुक), केशेषूत्सुकः ॥**

यहाँ से 'तृतीया' की अनुवृत्ति २।३।४५ तक जायेगी ॥

तृतीया, सप्तमी

नक्षत्रे च लुपि ॥२।३।४५॥

नक्षत्रे ७।१॥ च अ० ॥ लुपि ७।१॥ **अनु०**—तृतीया, सप्तमी ॥ **अर्थः**—लुबन्तात् नक्षत्रशब्दात् तृतीयासप्तम्यौ विभक्ती भवतः ॥ उदा०—पुष्येण पायसमश्नीयात्, पुष्ये पायसमश्नीयात् ॥

भाषार्थः—[लुपि] **लुबन्त [नक्षत्रे] नक्षत्रवाची शब्द से [च] भी तृतीया और सप्तमी विभक्ति होती हैं ॥ नक्षत्रवाची शब्द से जहाँ काल अर्थ में प्रत्यय आकर लुप् हो जाता है, उसका इस सूत्र में ग्रहण है ॥**

उदा०—पुष्येण पायसमश्नीयात् (पुष्य नक्षत्र से युक्त काल में खीर खावे), पुष्ये पायसमश्नीयात् ॥

पुष्य शब्द से नक्षत्रेण युक्तः कालः (४।२।३) से अण् प्रत्यय होकर, लुबविशेषे

(४।२।४) से उस अण् का लुप् हो गया है। अतः यह लुबन्त नक्षत्रवाची शब्द है, सो तृतीया और सप्तमी हो गई हैं ॥

प्रथमा

प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा ॥२।३।४६॥

प्रातिपदि···मात्रे ७।१॥ प्रथमा १।१॥ स०—प्रातिपदिकस्य अर्थः प्रातिपदिकार्थः, षष्ठीतत्पुरुषः। प्रातिपदिकार्थश्च लिङ्गञ्च परिमाणञ्च वचनञ्च प्रातिपदिकार्थ-लिङ्गपरिमाणवचनं, समाहारो द्वन्द्वः। प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनञ्चादः मात्रञ्च प्राति···वचनमात्रं, तस्मिन्···,कर्मधारयतत्पुरुषः। 'द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते' इत्येतस्मात् नियमात् मात्रशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते॥ अर्थः—प्रातिपदिकार्थः=सत्ता। लिङ्ग=स्त्रीपुंनपुंसकानि। परिमाणं=तोलनम्। वचनम्=एकत्वद्वित्वबहुत्वानि। प्रातिपदिकार्थमात्रे, लिङ्गमात्रे, परिमाणमात्रे, वचनमात्रे च प्रथमा विभक्तिर्भवति॥ उदा०—प्रातिपदिकार्थमात्रे—उच्चैः, नीचैः। लिङ्गमात्रे—कुमारी, वृक्षः, कुण्डम्। परिमाणमात्रे—द्रोणः, खारी, आढकम्। वचनमात्रे—एकः, द्वौ, बहवः॥

भाषार्थः—[प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे] प्रातिपदिकार्थमात्र, लिङ्ग-मात्र, परिमाणमात्र, तथा वचनमात्र में [प्रथमा] प्रथमा विभक्ति होती है॥

विशेषः—यहाँ इतनी बात समझने की है कि प्रातिपदिकार्थ क्या है? प्राति-पदिकार्थ पञ्चक (सत्ता, द्रव्य, लिङ्ग, सङ्ख्या, कारक) एवं त्रिक (सत्ता, द्रव्य, लिङ्ग) तथा द्विक (सत्ता, द्रव्य) को भी कहते हैं। जब पञ्चक प्रातिपदिकार्थ मानेंगे, तो लिङ्गादि के पृथक् ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं रह जाती, क्योंकि वे सब प्रातिपादिकार्थ में ही आ गये। जब द्विक मानेंगे, तो बाकी सब पृथक्-पथक् कहने पड़ेंगे॥ लिङ्गमात्र आदि का यहाँ अर्थ यह है कि 'जहाँ प्रातिपदिकार्थ के अति-रिक्त लिङ्ग की भी अधिकता हो, परिमाण की भी अधिकता हो' सो लिङ्गमात्र का लिङ्गाधिक्ये, परिमाणाधिक्ये आदि अर्थ हुआ॥

यहाँ से 'प्रथमा' की अनुवृत्ति २।३।४८ तक जायेगी॥

प्रथमा

सम्बोधने च ॥२।३।४७॥

सम्बोधने ७।१॥ च अ०॥ अनु०—प्रथमा॥ अर्थः—सम्बोधने च प्रथमा विभक्तिर्भवति॥ उदा०—हे देवदत्त, हे देवदत्तौ, हे देवदत्ताः॥

भाषार्थः—[सम्बोधने] सम्बोधन में [च] भी प्रथमा विभक्ति होती है॥ इस प्रकार सु औ जस् सम्बोधन विभक्ति में भी आते हैं॥ सम्बोधन में प्रथमा विभक्ति आकर—हे देवदत्त सु इस अवस्था में २।३।४९ से सम्बुद्धि संज्ञा हो गई है।

तथा सम्बुद्धि संज्ञा होने से एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः (६।१।६७) से सु का लोप हो गया है ॥

सामन्त्रितम् ॥२।३।४८॥

सा १।१॥ आमन्त्रितम् १।१॥ अनु०—प्रथमा ॥ अर्थः—सा इत्यनेन सम्बोधने या प्रथमा सा निर्दिश्यते ॥ सम्बोधने या प्रथमा तदन्तं शब्दरूपं आमन्त्रित-सञ्ज्ञं भवति ॥ उदा०—अग्ने ॥

भाषार्थः—[सा] सम्बोधन में जो प्रथमा उसकी [आमन्त्रितम्] आमन्त्रित संज्ञा होती है ॥ आमन्त्रित संज्ञा होने से आमन्त्रितस्य च (६।१।१९२) से अग्ने को आद्युदात्त हो गया है ॥

यहाँ से 'आमन्त्रितम्' की अनुवृत्ति २।३।४९ तक जायेगी ॥

एकवचनं सम्बुद्धिः ॥२।३।४९॥

एकवचनम् १।१॥ सम्बुद्धिः १।१॥ अनु०—आमन्त्रितम् ॥ अर्थः—आमन्त्रित-प्रथमाविभक्तेर्यद् एकवचनं तत्सम्बुद्धिसञ्ज्ञकं भवति ॥ उदा०—अग्ने । वायो । देवदत्त ॥

भाषार्थः—आमन्त्रितसञ्ज्ञक प्रथमा विभक्ति के [एकवचनम्] एकवचन की [सम्बुद्धिः] सम्बुद्धि संज्ञा होती है ॥ सम्बुद्धि संज्ञा होने से अग्ने वायो में ह्रस्वस्य गुणः (७।३।१०८) से गुण, तथा एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः (६।१।६७) से सु का लोप हो गया है ॥

षष्ठी शेषे ॥२।३।५०॥

षष्ठी १।१॥ शेषे ७।१॥ अर्थः—कर्मादीनि कारकाणि प्रातिपदिकार्थश्च यत्र न विवक्ष्यन्ते स शेषः ।शेषे षष्ठी विभक्तिर्भवति ॥ उदा०—राज्ञः पुरुषः । कार्पासस्य वस्त्रम् । वृक्षस्य शाखा ॥

भाषार्थः—कर्मादि कारक तथा प्रातिपदिकार्थ जहाँ विवक्षित न हों, वह शेष है । [शेषे] शेष में [षष्ठी] षष्ठी विभक्ति होती है ॥ उदा०—राज्ञः पुरुषः (राजा का पुरुष) । कार्पासस्य वस्त्रम् (रुई का वस्त्र) । वृक्षस्य शाखा (वृक्ष की शाखा) ॥

यहाँ से 'षष्ठी शेषे' की अनुवृत्ति पाद के अन्त तक जायेगी । तथा जिन-जिन सूत्रों में 'शेषे' अधिकार लगेगा, वहाँ 'अनभिहिते' अधिकार नहीं लगेगा, ऐसा जानें ॥

षष्ठी

ज्ञोऽविदर्थस्य करणे ॥२।३।५१॥

ज्ञः ६।१॥ अविदर्थस्य ६।१॥ करणे ७।१॥ स०—विद् अर्थो यस्य स विदर्थः, बहुव्रीहिः । न विदर्थः अविदर्थः, तस्य···,नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—षष्ठी शेषे ॥ अर्थः—अविदर्थस्य=अज्ञानार्थस्य ज्ञाधातोः करणे कारके शेषत्वेन विवक्षिते षष्ठी विभक्तिर्भवति ॥ उदा०—सर्पिषो जानीते । मधुनो जानीते ॥

भाषार्थः—[अविदर्थस्य] अज्ञानार्थक जो [ज्ञः] ज्ञा धातु उसके [करणे] करण कारक में शेष विवक्षित होने पर षष्ठी विभक्ति होती है ॥ घी के कारण प्रवृत्ति हो रही है, अथवा—भ्रान्ति के कारण घी समझ कर प्रवृत्ति हो रही है, अतः अज्ञानार्थ है । अकर्मकाच्च (१।३।४५) से जानीते में आत्मनेपद हुआ है ॥ शेष सर्वत्र इसलिये कहते हैं कि कारक विवक्षाधीन हैं, सो किसी कारक की विवक्षा न हो, तब शेष विवक्षित होने पर षष्ठी होगी ॥

षष्ठी

अधीगर्थदयेशां कर्मणि ॥२।३।५२॥

अधीगर्थदयेशाम् ६।३॥ कर्मणि ७।१॥ अनु०—षष्ठी शेषे ॥ स०—अधीग् अर्थो येषां धातूनां ते अधीगर्थाः । अधीगर्थाश्च दयश्च इट् च अधीगर्थदयेशः, तेषां ···बहुव्रीहिगर्भेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अर्थः—अधीगर्थ=स्मरणार्थक, दय, ईश इत्येतेषां धातूनां शेषे विवक्षिते कर्मणि कारके षष्ठी विभक्तिर्भवति ॥ उदा०—मातुरध्येति, मातुः स्मरति । सर्पिषो दयते । सर्पिष ईष्टे ॥

भाषार्थः—[अधीगर्थदयेशाम्] अधि पूर्वक इक् धातु के अर्थवाली धातुओं के, तथा दय और ईश धातुओं के [कर्मणि] कर्म कारक में, शेष विवक्षित होने पर षष्ठी विभक्ति होती है ॥ अधि पूर्वक इक् धातु स्मरण अर्थ में होती है ॥ उदा०—मातुरध्येति (माता का स्मरण करता है), मातुः स्मरति । सर्पिषो दयते (घी देता है) । सर्पिष ईष्टे (घी पर अधिकार करता है) ॥

यहाँ से 'कर्मणि' की अनुवृत्ति २।३।६१ तक जायेगी ॥

षष्ठी

कृञः प्रतियत्ने ॥२।३।५३॥

कृञः ६।१॥ प्रतियत्ने ७।१॥ अनु०—कर्मणि, षष्ठी शेषे ॥ अर्थः—कृञ् धातोः कर्मणि कारके शेषत्वेन विवक्षिते प्रतियत्ने गम्यमाने षष्ठी विभक्तिर्भवति ॥ उदा०—एधोदकस्य उपस्कुरुते ॥

भाषार्थः—[कृञः] कृञ् धातु के कर्म में शेष विवक्षित होने पर [प्रतियत्ने] प्रतियत्न गम्यमान हो, तो षष्ठी विभक्ति होती है ॥ 'प्रतियत्न' किसी गुण को किसी और रूप में बदलने को कहते हैं ॥

उदा०—एधोदकस्य उपस्कुरुते (इंधन जल के गुण को बदलता है) ॥

रुजार्थानां भाववचनानामज्वरेः ॥२।३।५४॥

रुजार्थानाम् ६।३॥ भाववचनानाम् ६।३॥ अज्वरेः ६।१॥ स०—रुजा अर्थो येषां ते रुजार्थाः, तेषां⋯⋯बहुव्रीहिः । भावो वचनः (कर्त्ता) येषां ते भाववचनाः, तेषाम्⋯ बहुव्रीहिः । न ज्वरिः अज्वरिः, तस्य अज्वरेः, नञ्तत्पुरुषः ॥ वक्तीति वचनः कर्त्तरि ल्युट्, तेन वचनशब्दस्य कर्त्तरि तात्पर्यम् ॥ अनु०—कर्मणि, षष्ठी शेषे ॥ अर्थः—भाववचनानां=भावकर्त्तृकाणां रुजार्थानां धातूनां ज्वरवर्जितानां कर्मणि कारके शेषे विवक्षिते षष्ठी विभक्तिर्भवति ॥ उदा०—चौरस्य रुजति रोगः । चौरस्य आमयति आमयः ॥

भाषार्थः—[भाववचनानाम्] धात्वर्थ को कहनेवाले जो घञादिप्रत्ययान्त शब्द, वे हैं कर्त्ता जिन [रुजार्थानाम्] रुजार्थक धातुओं के, उनके कर्म में शेष विवक्षित होने पर षष्ठी विभक्ति होती है, [अज्वरेः] ज्वर धातु को छोड़कर ॥ उदा०—चौरस्य रुजति रोगः (रोग चोर को कष्ट देता है) । चौरस्य आमयति आमयः ॥ यहां भाववचन का अर्थ भावकर्त्तृक है । भाव का अर्थ हुआ धात्वर्थ, तथा वचन का तात्पर्य कर्त्ता से है । सो उदाहरण में 'रुज्' धातु का कष्ट भोगना जो धात्वर्थ है, वह घञ्प्रत्ययान्त 'रोग' शब्द से कहा जा रहा है । तथा रोग शब्द रुजति का कर्त्ता है, अतः चौर कर्म में षष्ठी हो गई है ॥

आशिषि नाथः ॥२।३।५५॥

आशिषि ७।१॥ नाथः ६।१॥ अनु०—कर्मणि, षष्ठी शेषे ॥ अर्थः—आशिषि वर्त्तमानस्य नाथधातोः कर्मणि कारके शेषत्वेन विवक्षिते षष्ठी विभक्तिर्भवति ॥ उदा०—सर्पिषो नाथते । मधुनो नाथते ॥

भाषार्थः—[आशिषि] आशीर्वचन अर्थ में [नाथः] नाथ धातु के कर्म में शेष विवक्षित होने पर षष्ठी विभक्ति होती है ॥ यहाँ 'आशीः' का अर्थ इच्छा है ॥ उदा०—सर्पिषो नाथते (घी की इच्छा करता है) । मधुनो नाथते । (शहद की इच्छा करता है) ॥

जासिनिप्रहणनाटक्राथपिषां हिंसायाम् ॥२।३।५६॥

जासिनि⋯पिषाम् ६।३॥ हिंसायाम् ७।१॥ स०—जासिश्च निप्रहणं च नाटश्च क्राथश्च पिट् च जासिनिप्रहणनाटक्राथपिषः, तेषां⋯⋯,इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—कर्मणि, षष्ठी शेषे ॥ अर्थः—जसुधातोः चौरादिकस्य निपूर्वकस्य प्रपूर्वकस्य हनधातोः, नाट क्राथ पिष इत्येतेषां च हिंसाक्रियाणाम् कर्मणि कारके शेषत्वेन

विवक्षिते षष्ठी विभक्तिर्भवति ॥ उदा०—चौरस्य उज्जासयति । दुष्टस्य निप्रहन्ति, वृषलस्य निहन्ति, चौरस्य प्रहन्ति । सङ्घातविगृहीतस्य नि प्र इत्येतस्य ग्रहणम् । चौरस्य उन्नाटयति । चौरस्य क्राथयति । चौरस्य पिनष्टि ॥

भाषार्थः—[हिंसायाम्] हिंसा क्रियावाली [जासिनिप्रहणनाटक्राथपिषाम्] जसु ताडने, नि प्र पूर्वक हन, ण्यन्त नट एवं, क्रथ पिष् इन धातुओं के कर्म में शेष विवक्षित होने पर षष्ठी विभक्ति होती है ॥ उदा०—चौरस्य उज्जासयति (चोर को मारता है) । दुष्टस्य निप्रहन्ति (दुष्ट को मारता है), वृषलस्य निहन्ति (नीच को मारता है), चौरस्य प्रहन्ति (चोर को मारता है) । चौरस्य उन्नाटयति (चोर को नष्ट करता है) । चौरस्य क्राथयति (चोर को मारता है) । चौरस्य पिनष्टि (चोर को मार-मार कर पीसता है) ॥ क्रथ धातु घटादिगण में पढ़ी है, सो घटादयो मितः (धातुपाठ भ्वादिगण का सूत्र पृ० १२) से मित् होकर मितां ह्रस्वः (६।४।९२) से ह्रस्व प्राप्त था, पर यहाँ निपातन से वृद्धि हो जाती है । उदाहरण में चौर कर्म है, सो यहाँ षष्ठी हो गई है ॥

षष्ठी

व्यवहृपणोः समर्थयोः ॥२।३।५७॥

व्यवहृपणोः ६।२॥ समर्थयोः ६।२॥ स०—व्यवहृ च पणश्च व्यवहृपणौ, तयोः ....,इतरेतरयोगद्वन्द्वः । समोऽर्थो ययोः तौ समर्थौ, तयोः.. बहुव्रीहिः ॥ अनु०—कर्मणि, षष्ठी शेषे ॥ अर्थः—वि अव पूर्वको यो हृञ् धातुः, पण धातुश्च, तयोः समर्थयोः कर्मणि कारके शेषत्वेन विवक्षिते षष्ठी विभक्तिर्भवति ॥ उदा०—शतस्य व्यवहरति, सहस्रस्य व्यवहरति । शतस्य पणते, सहस्रस्य पणते ॥

भाषार्थः—[व्यवहृपणोः] वि अव पूर्वक हृ धातु, तथा पण धातु [समर्थयोः] समर्थ=समानार्थक हों, तो उनके कर्म में शेष विवक्षित होने पर षष्ठी विभक्ति होती है ॥ वि अव पूर्वक हृ धातु व्यवहारार्थक है, तथा पण धातु भी व्यवहार अर्थ-वाली ली गई है, सो दोनों समानार्थक हैं ॥ उदा०—शतस्य व्यवहरति (सौ रुपये व्यवहार में लाता है), सहस्रस्य व्यवहरति । शतस्य पणते (सौ रुपये व्यवहार में लाता है), सहस्रस्य पणते ॥

षष्ठी

दिवस्तदर्थस्य ॥२।३।५८॥

दिवः ६।१॥ तदर्थस्य ६।१॥ स०—सः (व्यवहारः) अर्थो यस्य स तदर्थः, तस्य ......,बहुव्रीहिः ॥ अनु०—कर्मणि, षष्ठी ॥ अर्थः—तदर्थस्य=व्यवहारार्थस्य दिव्धातोः अनभिहिते कर्मणि कारके षष्ठी विभक्तिर्भवति ॥ उदा०—शतस्य दीव्यति, सहस्रस्य दीव्यति ॥

भाषार्थः—[तदर्थस्य] व्यवहारार्थक [दिवः] दिव् धातु के कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है ॥ तदर्थ से यहाँ व्यवहृ पण् धातुओं का जो व्यवहार अर्थ है, वह लिया गया है ॥ इस तथा अगले दो सूत्रों में 'शेषे' का सम्बन्ध नहीं है ॥

उदा०—शतस्य दीव्यति (सौ रुपये व्यवहार में लाता है), सहस्रस्य दीव्यति ॥

यहाँ से 'दिवस्तदर्थस्य' की अनुवृत्ति २।३।६० तक जायेगी ॥

विभाषोपसर्गे ॥२।३।५९॥

षष्ठी, द्वितीया

विभाषा १।१॥ उपसर्गे ७।१॥ अनु०—दिवस्तदर्थस्य, कर्मणि षष्ठी ॥ अर्थः—तदर्थस्य दिव्धातोः सोपसर्गस्य कर्मणि कारके विभाषा षष्ठी विभक्तिर्भवति ॥ पूर्वेण नित्यं प्राप्ता षष्ठी विकल्प्यते ॥ उदा०—शतस्य प्रतिदीव्यति, शतं प्रतिदीव्यति । सहस्रस्य प्रतिदीव्यति, सहस्रं प्रतिदीव्यति ॥

भाषार्थः—व्यवहारार्थक दिव् धातु [उपसर्गे] सोपसर्ग हो, तो कर्म कारक में [विभाषा] विकल्प से षष्ठी विभक्ति होती है, पक्ष में यथाप्राप्त द्वितीया होती है ॥

द्वितीया ब्राह्मणे ॥२।३।६०॥

द्वितीया

द्वितीया १।१॥ ब्राह्मणे ७।१॥ अनु०—दिवस्तदर्थस्य, कर्मणि षष्ठी ॥ अर्थः—ब्राह्मणविषयके प्रयोगे तदर्थस्य दिव्धातोः कर्मणि कारके द्वितीया विभक्तिर्भवति ॥ उदा०—गामस्य तदहः सभायां दीव्येयुः ॥

भाषार्थः—[ब्राह्मणे] ब्राह्मणविषयक प्रयोग में व्यवहारार्थक दिव् धातु के कर्म में [द्वितीया] द्वितीया विभक्ति होती है ॥ कर्म में द्वितीया तो होती ही है, पुनर्वचन पूर्व सूत्रों से जो षष्ठी प्राप्त थी, उसके हटाने के लिए है । अतः 'गाम्' में यहाँ षष्ठी न होकर द्वितीया हो गई ॥

षष्ठी

प्रेष्यब्रुवोर्हविषो देवतासम्प्रदाने ॥२।३।६१॥

प्रेष्यब्रुवोः ६।२॥ हविषः ६।१॥ देवतासम्प्रदाने ७।१॥ स०—प्रेष्यश्च ब्रूश्च प्रेष्यब्रुवौ, तयोः ·····,इतरेतरयोगद्वन्द्वः । देवता सम्प्रदानं यस्य (अर्थस्य) स देवता-सम्प्रदानः, तस्मिन्, बहुव्रीहि ॥ अनु०—कर्मणि षष्ठी ॥ अर्थः—देवतासम्प्रदानेऽर्थे वर्त्तमानयोः प्रेष्यब्रुवोः कर्मणो हविषो वाचकात् शब्दात् षष्ठी विभक्तिर्भवति ॥ उदा०—अग्नये छागस्य हविषो वपाया मेदसः प्रे३ष्य । अग्नये छागस्य हविषो वपाया मेदसोऽनुब्रू३हि ॥

भाषार्थः—[देवतासम्प्रदाने] देवता सम्प्रदान है जिसका, उस क्रिया के वाचक [प्रेष्यब्रुवः] प्र पूर्वक इष धातु (दिवादि गणवाली) तथा ब्रू धातु के कर्म [हविषः] हवि के वाचक शब्द से षष्ठी विभक्ति होती है ॥

चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि ॥२।३।६२॥

चतुर्थ्यर्थे ७।१॥ बहुलम् १।१॥ छन्दसि ७।१॥ स०—चतुर्थ्यर्थे इत्यत्र षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—षष्ठी ॥ अर्थः—छन्दसि विषये चतुर्थ्यर्थे बहुलं षष्ठी विभक्तिर्भवति ॥ उदा०—दार्वाघाटस्ते वनस्पतीनाम् (यजु० २४।३५॥ तै० ५।५।१५।१। मै० ३।१४।१६)। ते 'वनस्पतिभ्यः' एवं प्राप्ते। कृष्णो रात्र्यै ॥

भाषार्थः—[चतुर्थ्यर्थे] चतुर्थी के अर्थ में [छन्दसि] वेदविषय में [बहुलम्] बहुल करके षष्ठी विभक्ति होती है ॥ बहुल कहने से 'रात्र्यै' यहाँ षष्ठी नहीं होती है ॥

यहाँ से 'बहुलम् छन्दसि' की अनुवृत्ति २।३।६३ तक जायेगी ॥

यजेश्च करणे ॥२।३।६३॥

यजेः ६।१॥ च अ० ॥ करणे ७।१॥ अनु०—बहुलं छन्दसि, षष्ठी ॥ अर्थः—यजधातोः करणे कारके वेदविषये बहुलं षष्ठी विभक्तिर्भवति ॥ उदा०—घृतस्य यजते (कौषी० १६।५॥ श०४।४।२।४), घृतेन यजते। सोमस्य यजते, सोमेन यजते ॥

भाषार्थः—[यजेः] यज धातु के [च] भी [करणे] करण कारण में वेदविषय में बहुल करके षष्ठी विभक्ति होती है ॥ करण में तृतीया प्राप्त थी, बहुल कहने से पक्ष में वह भी हो गई ॥

कृत्वोऽर्थप्रयोगे कालेऽधिकरणे ॥२।३।६४॥

कृत्वोऽर्थप्रयोगे ७।१॥ काले ७।१॥ अधिकरणे ७।१॥ स०—कृत्वसोऽर्थः कृत्वोर्थः, षष्ठीतत्पुरुषः। कृत्वोर्थ एव अर्थो येषां ते (प्रत्ययाः) कृत्वोऽर्थाः, बहुव्रीहिः। कृत्वोऽर्थस्य प्रयोगः कृत्वोऽर्थप्रयोगः तस्मिन् ...., षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—षष्ठी शेषे ॥ अर्थः—कृत्वोऽर्थानां प्रत्ययानां प्रयोगे काले अधिकरणे शेषत्वेन विवक्षिते षष्ठी विभक्तिर्भवति ॥ उदा०—पञ्चकृत्वोऽह्नो भुङ्क्ते। द्विरह्नोऽधीते। दिवसस्य पञ्चकृत्वो भुङ्क्ते ॥

भाषार्थः—[कृत्वोऽर्थप्रयोगे] कृत्वसुच् प्रत्यय के अर्थ में वर्त्तमान जो प्रत्यय हैं, तदन्त प्रातिपदिकों के प्रयोग में [काले] कालवाची [अधिकरणे] अधिकरण शेष की विवक्षा होने पर षष्ठी विभक्ति होती है ॥

उदा०—पञ्चकृत्वोऽह्नो भुङ्क्ते (दिन में पांच बार खाता है)। द्विरह्नोऽधीते (दिन में दो बार पढ़ता है)। दिवसस्य पञ्चकृत्वो भुङ्क्ते ॥

अहन् तथा दिवस शब्द कालवाची अधिकरण हैं, उनमें षष्ठी हो गई है ॥ संख्यायाः क्रियाभ्या० (५।४।१७) से पञ्चकृत्वः में कृत्वसुच्, तथा द्विर् में द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच् (५।४।१८) से कृत्वोऽर्थ में सुच् प्रत्यय हुआ है ॥

कर्तृकर्मणोः कृति ॥२।३।६५॥

षष्ठी

कर्तृकर्मणोः ७।२॥ कृति ७।१॥ स०—कर्त्ता च कर्म च कर्त्तृकर्मणी, तयोः ...... ,इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—षष्ठी, अनभिहिते ॥ अर्थः—कृतप्रयोगे अनभिहिते कर्त्तरि कर्मणि च षष्ठी विभक्तिर्भवति ॥ उदा०—कर्त्तरि—भवतः शायिका। भवत आसिका। कर्मणि—अपां स्रष्टा। पुरां भेत्ता। वज्रस्य भर्त्ता ॥

भाषार्थः—अनभिहित [कर्तृकर्मणोः] कर्त्ता और कर्म में [कृति] कृत् का प्रयोग होने पर षष्ठी विभक्ति होती है ॥ कृदतिङ् (३।१।६३) से कृत्संज्ञक ण्वुच् प्रत्यय पर्यायार्हर्णो० (३।३।१११) से शायिका आदि में हुआ है। तथा तृच् प्रत्यय स्रष्टा आदि में हुआ है। सो इनके कर्त्ता और कर्म में षष्ठी हो गई है। पूरी सिद्धि परि० २।२।१६ में देखें ॥

यहाँ से 'कृति' की अनुवृत्ति २।३।६६ तक जायेगी ॥

उभयप्राप्तौ कर्मणि ॥२।३।६६॥

षष्ठी

उभयप्राप्तौ ७।१॥ कर्मणि ७।१॥ स०—उभयोः (कर्त्तृकर्मणोः) प्राप्तिर्यस्मिन् (कृति) सोऽयमुभयप्राप्तिः, तस्मिन् ...... ,बहुव्रीहिः ॥ अनु०—कृति, षष्ठी, अनभिहिते ॥ अर्थः—उभयोः कर्त्तृकर्मणोः प्राप्तिर्यस्मिन् कृति तत्रानभिहिते कर्मण्येव षष्ठी विभक्तिर्भवति, न कर्त्तरीति नियम्यते ॥ उदा०—आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपालकेन। रोचते मे ओदनस्य पाको देवदत्तेन ॥

भाषार्थः—पूर्वसूत्र से कर्त्ता और कर्म दोनों में षष्ठी प्राप्त थी। सो यहाँ नियम कर दिया कि जिस कृदन्त के योग में [उभयप्राप्तौ] कर्त्ता और कर्म दोनों में एक साथ षष्ठी प्राप्त हो, वहाँ अनभिहित [कर्मणि] कर्म में षष्ठी हो, कर्त्ता में नहीं ॥ उदाहरण में दोहः पाकः घञ् प्रत्ययान्त कृदन्त हैं। अगोपालक तथा देवदत्त कर्त्ता हैं, और गौ तथा ओदन कर्म हैं। सो कृत् के योग में दोनों में (कर्त्ता और कर्म में) षष्ठी प्राप्त हुई, तब इस सूत्र से कर्म 'गौ' तथा 'ओदन' में ही षष्ठी हुई। कर्त्ता में कर्त्तृकरणयोस्तृतीया (२।३।१८) से तृतीया हो गई ॥

षष्ठी

क्तस्य च वर्त्तमाने ॥२।३।६७॥

क्तस्य ६।१॥ च अ० ॥ वर्त्तमाने ७।१॥ अनु०—षष्ठी ॥ **अर्थः**—वर्त्तमाने काले विहितस्य क्तप्रत्ययान्तस्य प्रयोगे षष्ठी विभक्तिर्भवति ॥ उदा०—राज्ञां मतः । राज्ञां बुद्धः । राज्ञां पूजितः ॥

भाषार्थः—[वर्तमाने] **वर्त्तमान काल में विहित जो [क्तस्य] क्त प्रत्यय उसके प्रयोग में [च] भी षष्ठी विभक्ति होती है ॥** न लोकाव्ययनिष्ठा० (२।३।६९) **से निष्ठासंज्ञक होने से क्तप्रत्ययान्त के प्रयोग में षष्ठी विभक्ति प्राप्त नहीं थी । यहाँ वर्त्तमान काल में विहित क्त में प्राप्त करा दी ।** मतिबुद्धिपूजार्थे० (३।२।१८८) **से वर्त्तमानकाल में क्त विहित है ॥**

यहाँ से 'क्तस्य' की अनुवृत्ति २।३।६८ तक जायेगी॥

षष्ठी

अधिकरणवाचिनश्च ॥२।३।६८॥

अधिकरणवाचिनः ६।१॥ च अ० ॥ अनु०—क्तस्य, षष्ठी ॥ **अर्थः**—अधिकरणवाचिनः क्तप्रययान्तस्य प्रयोगे षष्ठी विभक्तिर्भवति ॥ **क्तोऽधिकरणे०** (३।४।७६) इत्यनेनाधिकरणे क्तो विहितः ॥ उदा०—इदमेषां यातम् । इदमेषां भुक्तम् । इदमेषां शयितम् । इदमेषां सृप्तम् ॥

भाषार्थः—[अधिकरणवाचिनः] **अधिकरणवाची क्तप्रत्ययान्त के प्रयोग में [च] भी षष्ठी विभक्ति होती है ॥** २।३।६९ **से षष्ठी का निषेध प्राप्त होने पर इस सूत्र का विधान है ॥** क्तोऽधिकरणे० (३।४।७६) **से अधिकरण में क्त होता है ॥** उदा०—**इदमेषां यातम् । इदमेषां भुक्तम् । इदमेषां शयितम् (यह इनके सोने का स्थान) । इदमेषां सृप्तम् (यह इनके जाने का स्थान) ॥**

षष्ठी निषेध

न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् ॥२।३।६९॥

न अ० ॥ लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् ६।३॥ **स०**—खलोऽर्थः खलर्थः, खलर्थ एव अर्थो येषां ते खलर्थाः, बहुव्रीहिः । लश्च उश्च उकश्च अव्ययञ्च निष्ठा च खलर्थश्च तृन् चेति लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनः, तेषां······,इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ **अनु०**—षष्ठी ॥ **अर्थः**—ल, उ, उक, अव्यय, निष्ठा, खलर्थ, तृन इत्येतेषां योगे षष्ठी विभक्तिर्न भवति ॥ 'ल' ग्रहणेन ये लकारस्य स्थान आदेशाः शतृशानचौ, कानच्क्वसू किकिनौ च ते गृह्यन्ते ॥ **उदा०**—ओदनं पचन्, ओदनं पचमानः । कानच्—ओदनं पेचानः । क्वसु—ओदनं पेचिवान् । किकिनौ—पपिः सोमं, ददिर्गाः । उ—कटं चिकीर्षुः, ओदनं बुभुक्षुः । उक—आगामुकं वाराणसीं रक्ष आहुः । अव्यय—कटं कृत्वा, ओदनं भुक्त्वा । निष्ठा—कटं कृतवान्, देवदत्तेन कृतम् । खलर्थ—ईषत्करः

कटो भवता, ईषत्पानः सोमो भवता। तृन्——सोमं पवमानः। नटमाघ्नानः। अधीयन् पारायणम्। कर्त्ता कटान्। वदिता जनापवादान्॥ तृन् इत्यनेन प्रत्याहारग्रहणम्, लटः शतृ० (३।२।१२४) इत्यारभ्य आ तृनो (३।२।१३५) नकारात्॥

भाषार्थः—[लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्] ल, उ, उक, अव्यय, निष्ठा, खलर्थ, तृन् इनके प्रयोग में षष्ठी विभक्ति [न] नहीं होती॥ ल से लादेश शतृ शानच् कानच् क्वसु कि किन् इनका ग्रहण है॥ कर्तृकर्मणोः कृति (२।३।६५) से कर्त्ता कर्म में षष्ठी प्राप्त होने पर इस सूत्र ने निषेध कर दिया है॥

उदा०—ओदनं पचन्, ओदनं पचमानः। कानच्—ओदनं पेचानः (उसने भात पकाया)। क्वसु—ओदनं पेचिवान्। किकिन्—पपिः सोमम्, ददिर्गाः। उ—कटं चिकीर्षुः (चटाई बनाने की इच्छावाला), ओदनं बुभुक्षुः (चावल खाने की इच्छावाला)। उक—आगामुकं वाराणसीं रक्ष आहुः (राक्षस लोग भी मुक्ति की इच्छा से वाराणसी की ओर आने की इच्छा रखते हैं, ऐसा लोग कहते हैं)। अव्यय—कटं कृत्वा (चटाई बनाकर), ओदनं भुक्त्वा। निष्ठा—कटं कृतवान् (चटाई बनाई), देवदत्तेन कृतम् (देवदत्त के द्वारा किया गया)। खलर्थ—ईषत्करः कटो भवता (आपको चटाई बनाना आसान है), ईषत्पानः सोमो भवता (आपके द्वारा सोम पीना आसान है)। तृन्——सोमं पवमानः (सोम को पवित्र करते हुए)। नट-माघ्नानः (नट को मारता हुआ)। अधीयन् पारायणम् (पारायण को पढ़ता हुआ)। कर्त्ता कटान् (चटाई को बनानेवाला)। वदिता जनापवादान् (लोगों की बुराई को कहनेवाला)॥

लटः शतृशान० (३।२।१२४) से लट् के स्थान शतृ शानच्, लिटः कानज् वा (३।२।१०६) से लिट् के स्थान में कानच्, क्वसुश्च (३।२।१०७) से क्वसु आदृ-गमहन० (३।२।१७१) से कि तथा किन् प्रत्यय लिट्स्थानी हैं। अतः ये सब लादेश होने से "ल" कहने से लिए गये हैं॥ पेचिवान् आदि की पूरी सिद्धियाँ तत्-तत् सूत्रों में ही देखें। यहाँ तो यही दिखाना है कि कर्म में (ओदनम् आदि में) जो षष्ठी प्राप्त थी, वह नहीं हुई॥ सनाशंसभिक्ष उः (३।२।१६८) से उ प्रत्यय चिकीर्षुः आदि में हुआ है॥ लषपतपद० (३।२।१५४) से उकञ्, जिसको सूत्र में 'उक' कहा है, 'आगामुकं' में हुआ है॥ कृत्वा की अव्ययसंज्ञा क्त्वातोसुन्कसुनः (१।१।३९) से हुई है॥ खल् के अर्थ में जो विहित प्रत्यय वह खलर्थ कहाये। ईषत्करः में ईषद्दुःसुषु० (३।३।१२६) से खल्, तथा ईषत्पानः में खलर्थ में युच् प्रत्यय हुआ है॥ तृन् से प्रत्याहार का ग्रहण है—लटः शतृशानचाव०(३।२।१२४)के तृ से लेकर तृन् के नकारपर्यन्त। अतः 'तृन्' कहने से उसके अन्तर्गत जो शानन्, चानश्,

शतृ, तृन् उनका भी ग्रहण होता है। पवमानः में पूङ्यजोः शानन् (३।२।१२८) से शानन् प्रत्यय; 'आघ्नानः' में आङ् पूर्वक हन् धातु से ताच्छील्यवयो० (३।२।१२९) से चानश् प्रत्यय; एवं 'अधीयन्' में इङ्धार्य्योः शत्र० (३।२।१३०) से शतृ प्रत्यय; तथा कर्त्ता में तृन् (३।२।१३५) से तृन् प्रत्यय हुआ है। ये सब तृन् में प्रत्याहार ग्रहण करने से आ गये ॥ सब सिद्धियां तत्-तत् सूत्रों में ही देखें ॥ सूत्र में उ + उक में अकः सवर्णे० (६।१।९७) से दीर्घ एकादेश होकर ऊक बना, पुनः आद्गुणः (६।१।८४) से गुण एकादेश होकर 'लोक' बन गया ॥

यहाँ से 'न' की अनुवृत्ति २।३।७० तक जायेगी ॥

षष्ठी निषेध अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः ॥२।३।७०॥

अकेनोः ६।२॥ भविष्यदाधमर्ण्ययोः ७।२॥ स०——अकश्च इन् च अकेनौ, तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः। भविष्यच्च आधमर्ण्यञ्च भविष्यदाधमर्ण्ये, तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०——न, षष्ठी ॥ अर्थः—भविष्यति आधमर्ण्ये च विहितस्य अकान्तस्य इन्प्रत्ययान्तस्य च प्रयोगे षष्ठी विभक्तिर्न भवति ॥ उदा०— कटं कारको व्रजति, ओदनं भोजको व्रजति ॥ अकप्रत्ययस्तु भविष्यत्येव विहितो न त्वाधमर्ण्ये, तेनासम्भवमुदाहरणम् आधमर्ण्यस्य। ग्रामं गमी, ग्रामं गामी। आधमर्ण्ये—शतं दायी, सहस्रं दायी ॥

भाषार्थः—[अकेनोः] अक प्रत्यय तथा इन् प्रत्यय, जो [भविष्यदाधमर्ण्ययोः] भविष्यत् काल तथा आधमर्ण्य अर्थों में विहित हैं, तदन्त शब्दों के प्रयोग में षष्ठी विभक्ति नहीं होती है ॥ यहाँ दो प्रत्यय तथा दो ही अर्थों के होने से यथासंख्य होना चाहिये, सो नहीं होता, ऐसा व्याख्यान से जानना चाहिये। अक (वु) केवल भविष्यत् काल में विहित है, तथा 'इन्' भविष्यत् और आधमर्ण्य दोनों अर्थों में है, सो उसी प्रकार उदाहरण दिये हैं ॥ उदा०— कटं कारको व्रजति (चटाई बनानेवाला जाता है), ओदनं भोजको व्रजति। इनि——ग्रामं गमी (गाँव को जानेवाला)। ग्रामं गामी। आधमर्ण्ये—शतं दायी (सौ रुपया कर्जा चुकानेवाला), सहस्रं दायी ॥

कारकः आदि में ण्वुल् तुमुन्ण्वुलौ० (३।३।१०) से हुआ है। गमी में गमेरिनिः (उणा० ४।६) से इनि प्रत्यय हुआ है, जो कि भविष्यति गम्यादयः (३।३।३) सूत्र से भविष्यत् काल में विहित है ॥ दायी में आवश्यकाधमर्ण्ययो० (३।३।१७०) से णिनि आधमर्ण्य अर्थ में हुआ है। पूरी सिद्धि तत्-तत् सूत्रों में ही मिलेगी ॥ षष्ठी का प्रतिषेध करने पर कर्म में द्वितीया हो गई है ॥ यह सूत्र भी २।३।६५ का ही अपवाद है ॥

षष्ठी, तृतीया

कृत्यानां कर्त्तरि वा ॥२।३।७१॥

कृत्यानाम् ६।३।। कर्त्तरि ७।१।। वा अ० ।। अनु०—षष्ठी, अनभिहिते ।। अर्थः—कृत्यप्रत्ययान्तानां प्रयोगे अनभिहिते कर्त्तरि विकल्पेन षष्ठी विभक्तिर्भवति, न कर्मणि ।। उदा०—देवदत्तस्य कर्त्तव्यः, देवदत्तेन कर्त्तव्यः । भवतः कटः कर्त्तव्यः, भवता कटः कर्त्तव्यः ।।

भाषार्थः—[कृत्यानाम्] कृत्यप्रत्ययान्तों के प्रयोग में अनभिहित [कर्त्तरि] कर्त्ता में [वा] विकल्प से षष्ठी होती है, न कि कर्म में ।। कर्त्तृकर्म० (२।३।६५) से कर्त्ता में नित्य षष्ठी प्राप्त थी, विकल्प कह दिया है ।।

उदा०—देवदत्तस्य कर्त्तव्यः (देवदत्त के करने योग्य), देवदत्तेन कर्त्तव्यः । भवतः कटः कर्त्तव्यः (आपके द्वारा चटाई बनाई जानी चाहिये), भवता कटः कर्त्तव्यः ।। देवदत्त तथा भवत् शब्द कर्त्ता हैं, सो इनमें षष्ठी, तथा पक्ष में कर्तृ-करणयो० (२।३।१८) से तृतीया भी हो गई है । कट अभिहित कर्म है, अतः इसमें कर्त्तृकर्मणोः कृति (२।३।६५) से कृत् का प्रयोग होने पर भी षष्ठी नहीं हुई, क्योंकि वहाँ अनभिहित कर्म कहा है । सो वहाँ प्रातिपदिकार्थमात्र होने से प्राति० (२।३।४६) से प्रथमा विभक्ति हो गई है । तव्य प्रत्यय कृत्याः (३।१।९५) से कृत्यसंज्ञक है ।।

तृतीया षष्ठी

तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम् ॥२।३।७२॥

तुल्यार्थैः ३।३।। अतुलोपमाभ्याम् ३।२।। तृतीया १।१।। अन्यतरस्याम् अ० ।। स०—तुल्यः अर्थो येषां ते तुल्यार्थाः, तैः तुल्यार्थैः, बहुव्रीहिः । तुला च उपमा च तुलोपमे, न तुलोपमे अतुलोपमे, ताभ्यां, द्वन्द्वगर्भो नञ्तत्पुरुषः ।। अनु०—षष्ठी शेषे ।। अर्थः—तुल्यार्थैः शब्दैर्योगे शेषे विवक्षिते तृतीया विभक्तिर्भवति अन्यतरस्याम्, पक्षे षष्ठी च, तुलोपमाशब्दौ वर्जयित्वा ।। उदा०—तुल्यो देवदत्तेन, तुल्यो देवदत्तस्य । सदृशो देवदत्तेन, सदृशो देवदत्तस्य ।।

भाषार्थः—[तुल्यार्थैः] तुल्य के पर्यायवाची शब्दों के योग में शेष विवक्षित होने पर [अतुलोपमाभ्याम्] तुला और उपमा शब्दों को छोड़कर [अन्यतरस्याम्] विकल्प से [तृतीया] तृतीया विभक्ति होती है, पक्ष में षष्ठी विभक्ति होती है ।। उदा०—तुल्यो देवदत्तेन (देवदत्त के तुल्य), तुल्यो देवदत्तस्य । सदृशो देवदत्तेन, सदृशो देवदत्तस्य ।।

यहाँ से 'अन्यतरस्याम्' की अनुवृत्ति २।३।७३ तक जायेगी ।।

चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितैः ॥२।३।७३॥

चतुर्थी १।१॥ च अ० ॥ आशिषि ७।१॥ आयुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितैः ३।३॥ स०—आयुष्यं च मद्रं च भद्रं च कुशलं च सुखं च अर्थश्च हितं च आयुष्यमद्रभद्र-कुशलसुखार्थहितानि, तैः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—षष्ठी शेषे, अन्यतरस्याम् ॥ अर्थः—आशिषि गम्यमानायाम् आयुष्य, मद्र, भद्र, कुशल, सुख, अर्थ, हित इत्येतैर्योगे शेषे विवक्षिते विकल्पेन चतुर्थी विभक्तिर्भवति, पक्षे षष्ठी च ॥ उदा०—आयुष्यं देवदत्ताय भूयात्, आयुष्यं देवदत्तस्य भूयात् । अत्र 'आयुष्यादीनां पर्यायग्रहणम्' इत्यनेन वार्त्तिकेन पर्यायाणामपि ग्रहणं भवति । चिरं जीवितं देवदत्ताय, देवदत्तस्य वा भूयात् । मद्रं देवदत्ताय, मद्रं देवदत्तस्य । भद्रं देवदत्ताय, भद्रं देवदत्तस्य । कुशलं देवदत्ताय, कुशलं देवदत्तस्य । निरामयं देवदत्ताय, निरामयं देवदत्तस्य । सुखं देवदत्ताय, सुखं देवदत्तस्य । शं देवदत्ताय, शं देवदत्तस्य । अर्थो देवदत्ताय, अर्थो देवदत्तस्य । प्रयोजनं देवदत्ताय, प्रयोजनं देवदत्तस्य । हितं देवदत्ताय, हितं देवदत्तस्य । पथ्यं देवदत्ताय, पथ्यं देवदत्तस्य ॥

भाषार्थः—[आशिषि] आशीर्वचन गम्यमान हो, तो [आयुष्यमद्रभद्रकुशल-सुखार्थहितैः] आयुष्य, मद्र, भद्र, कुशल, सुख, अर्थ, हित इन शब्दों के योग में शेष विवक्षित होने पर [चतुर्थी] चतुर्थी विभक्ति होती है, [च] चकार से पक्ष में षष्ठी भी होती है ॥ यहाँ आयुष्य इत्यादि शब्दों के पर्यायवाचियों का भी ग्रहण होता है ॥

उदा०—आयुष्यं देवदत्ताय भूयात् (देवदत्त की आयु बढ़े), आयुष्यं देवदत्तस्य भूयात् । चिरं जीवितं देवदत्ताय देवदत्तस्य वा भूयात् । मद्रं देवदत्ताय (देवदत्त का भला हो), मद्रं देवदत्तस्य । भद्रं देवदत्ताय (देवदत्त का कल्याण हो), भद्रं देवदत्तस्य । कुशलं देवदत्ताय (देवदत्त का कुशल हो), कुशलं देवदत्तस्य । निरामयं देवदत्ताय (देवदत्त रोगरहित हो), निरामयं देवदत्तस्य । सुखं देवदत्ताय (देवदत्त को सुख हो), सुखं देवदत्तस्य । शं देवदत्ताय, शं देवदत्तस्य । अर्थो देवदत्ताय (देवदत्त का प्रयोजन सिद्ध हो), अर्थो देवदत्तस्य । प्रयोजनं देवदत्ताय, प्रयोजनं देवदत्तस्य । हितं देवदत्ताय (देवदत्त का हित हो), हितं देवदत्तस्य । पथ्यं देवदत्ताय, पथ्यं देवदत्तस्य ॥

॥ इति तृतीयः पादः ॥

—:—

चतुर्थः पादः

[एकवद्भाव-प्रकरणम्]

द्विगुरेकवचनम् ॥२।४।१॥

द्विगुः १।१॥ एकवचनम् १।१॥ स०—एकस्य वचनम् एकवचनम्, षष्ठीतत्पुरुषः ॥ **अर्थः**—द्विगुसमास एकवचनम्=एकस्य अर्थस्य वाचको भवति ॥ **उदा०**—पञ्च पूलाः समाहृताः पञ्चपूली, दशपूली ॥

भाषार्थः—[द्विगुः] द्विगु समास [एकवचनम्] एकवचन अर्थात् एक अर्थ का वाचक होता है ॥ सङ्ख्यापूर्वो द्विगुः (२।१।५१) से सङ्ख्या पूर्ववाले तत्पुरुष की द्विगु संज्ञा कही है ॥ पञ्चपूली आदि की सिद्धि परि० २।१।५० में देखें ॥ एकवद्भाव हो जाने से सर्वत्र द्व्येकयोर्द्वि० (१।४।२२) से एकवचन होकर 'सु' आ जाता है ॥

यहाँ से 'एकवचनम्' की अनुवृत्ति २।४।१६ तक जायेगी ॥

द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम् ॥२।४।२॥

द्वन्द्वः १।१। च अ० ॥ प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम् ६।३॥ स०—प्राणी च तूर्यश्च सेना च प्राणितूर्यसेनाः, तासाम् अङ्गानि प्राणितूर्यसेनाङ्गानि, तेषां, द्वन्द्वगर्भषष्ठीतत्पुरुषः ॥ **अनु०**—एकवचनम् ॥ **अर्थः**—प्राण्यङ्गानां तूर्याङ्गानां सेनाङ्गानां च द्वन्द्व एकवद्भवति ॥ **उदा०**—पाणी च पादौ च पाणिपादम् । शिरश्च ग्रीवा च शिरोग्रीवम् । तूर्याङ्गानाम्—मार्दङ्गिकश्च पाणविकश्च मार्दङ्गिकपाणविकम् । वीणावादकपरिवादकम् । सेनाङ्गानाम्—रथिकाश्च अश्वारोहाश्च रथिकाश्वारोहम् । रथिकपादातम् ॥

भाषार्थः—[प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्] प्राणी के अङ्ग, तूर्य=वाद्य के अङ्ग, तथा सेना के अङ्ग (अवयव) वाची शब्दों के [द्वन्द्वः] द्वन्द्व समास को [च] भी एकवद्भाव हो जाता है ॥ अङ्ग शब्द प्रत्येक के साथ सम्बन्धित होता है । अङ्ग का अर्थ अवयव है ॥

उदा०—पाणिपादम् (हाथ और पैर) । शिरोग्रीवम् (सिर और कण्ठ) । तूर्याङ्गानाम्—मार्दङ्गिकपाणविकम् (मृदङ्ग तथा पणव=ढोल बजानेवाला) । वीणावादकपरिवादकम् (वीणावादक और परिवादक) । सेनाङ्गानाम्—रथिकाश्वा-

रोहम् (रथवाले तथा घुड़सवार)। रथिकपादातम (रथवाले तथा पैदल चलनेवाले)। इस प्रकरण में द्वन्द्व समास को जहाँ-जहाँ एकवद्भाव किया है, वहाँ-वहाँ सर्वत्र स नपुंसकम् (२।४।१७) से नपुंसकलिङ्ग भी हो जाता है ॥ एकवद्भाव करने का सर्वत्र यही प्रयोजन है कि दो में द्विवचन तथा बहुतों में बहुवचन प्राप्त था, सो एकवद्भाव कहने से एकवचन ही हो ॥

यहाँ से 'द्वन्द्वः' की अनुवृत्ति २।४।१६ तक जायेगी ॥

अनुवादे चरणानाम् ॥२।४।३॥

अनुवादे ७।१॥ चरणानाम् ६।३॥ अनु०—द्वन्द्वः, एकवचनम् ॥ अर्थः—अनुवादे गम्यमाने चरणानां द्वन्द्व एकवद्भवति ॥ उदा०—उदगात् कठकालापम् । प्रत्यष्ठात् कठकौथुमम् ॥

भाषार्थः—[चरणानाम्] 'चरणवाचियों का जो द्वन्द्व उसको [अनुवादे] अनुवाद गम्यमान् होने पर एकवद्भाव हो जाता है ॥

उदा०—उदगात् कठकालापम् । प्रत्यष्ठात् कठकौथुमम् (प्रत्यक्षादि अन्य प्रमाण से जानकर कोई कहता है— कठों और कालापों की उन्नति हुई, कठों और कौथुमों की प्रतिष्ठा हुई) ॥

अध्वर्युक्रतुरनपुंसकम् ॥२।४।४॥

अध्वर्युक्रतुः १।१॥ अनपुंसकम् १।१॥ स०—अध्वर्योः (सम्बन्धी) क्रतुः, अध्वर्युक्रतुः, षष्ठीतत्पुरुषः । न नपुंसकम् अनपुंसकम्, नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—द्वन्द्वः एकवचनम् ॥ अर्थः—अध्वर्युवेदे विहितो यः क्रतुः स अध्वर्युक्रतुरित्युच्यते । अनपुंसकलिङ्गानाम् अध्वर्युक्रतुवाचिनां शब्दानां द्वन्द्वसमास एकवद् भवति ॥ उदा०—

१. चरण शाखा के प्रवर्त्तक ग्रन्थ का नाम है । चरण की बहुत सी शाखायें होती हैं, सो शाखा के आदि ग्रन्थ का नाम ही चरण है । हम यहां वैदिक विद्वान् रिसर्च स्कालर श्री० पं० भगवद्दत्त जी के ग्रंथ "वैदिक वाङ्मय का इतिहास" से उद्धरण उपस्थित करते हैं—"शाखा चरण का अवान्तर विभाग है । जैसे शाकल, वाष्कल, वाजसनेय, चरक आदि चरण हैं । इनकी आगे क्रमशः ५, ४, १५ और १२ शाखायें हैं । इस विचार का पोषक एक पाठ है—जमदग्निप्रवराय वाजसनेयचरणाय यजुर्वेदकण्वशाखाध्यायिने ...।" (देखो पृ० १७३, सं० द्वि०, प्रथमभाग) । उन शाखाओं के अध्येताओं के लिए भी गौणरूप से इन शब्दों का प्रयोग होता है । उदाहरणों में अध्येताओं के लिए कठ आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं ॥

अर्काश्च अश्वमेधश्च=अर्काश्वमेधम् । सायाह्नश्च अतिरात्रश्च=सायाह्नातिरात्रम् । सोमयागराजसूयम् ।।

भावार्थः—[अध्वर्युक्रतुः] अध्वर्यु (यजुर्वेद) में विहित जो क्रतु=यज्ञवाची शब्द, वे [अनपुंसकम्] नपुंसकलिङ्ग में वर्तमान न हों, तो उनका द्वन्द्व एकवद्भाव को प्राप्त होता है ।।

उदा०—अर्काश्वमेधम् (अर्कयज्ञ और अश्वमेधयज्ञ)। सायाह्नातिरात्रम् (सायाह्नयज्ञ और अतिरात्रयज्ञ)। सोमयागराजसूयम् (सोमयाग और राजसूय यज्ञ) ।।

अध्ययनतोऽविप्रकृष्टाख्यानाम् ।।२।४।५।।

अध्ययनतः अ० ।। अविप्रकृष्टाख्यानाम् ६।३।। स०—न विप्रकृष्टा अविप्रकृष्टा, नञ्तत्पुरुषः । अविप्रकृष्टा आख्या येषां ते अविप्रकृष्टाख्याः, तेषां ·····, बहुव्रीहिः ।। अनु०—द्वन्द्वः, एकवचनम् ।। अर्थः—अध्ययननिमित्तेन येषां शब्दानाम् अविप्रकृष्टाख्या =समीपाख्या अस्ति, तेषां द्वन्द्व एकवद् भवति ।। उदा०—वैयाकरणनैरुक्तम् । पदकक्रमकम् । क्रमकवार्त्तिकम् ।।

भावार्थः—[अध्ययनतः] अध्ययन के निमित्त से [अविप्रकृष्टाख्यानाम्] समीप की आख्यावाले जो शब्द हैं, उनका द्वन्द्व एकवद्भाव को प्राप्त होता है ।।

उदा०—वैयाकरणनैरुक्तम् (व्याकरण और निरुक्त के अध्येता)। पदकक्रमकम् (पदपाठ और क्रमपाठ के अध्येता। क्रमकवार्त्तिकम् (क्रमपाठ तथा वृत्ति के अध्येता) ।।

व्याकरण पूर्ण करने के पश्चात् निरुक्त पढ़ा जाता है । एवं वेद का पदपाठ पढ़ लेने के पश्चात् क्रमपाठ पढ़ते हैं । सो ये सब अध्ययन के निमित्त से समीप की आख्यावाले शब्द हैं, इन्हें एकवद्भाव हो गया है । स नपुंसकम् (२।४।१७) से नपुंसकलिंग हो ही जायेगा । क्रमादिभ्यो वुन् (४।२।६०) से पदक तथा क्रमक में वुन् प्रत्यय हुआ है । तथा क्रतूक्थादि० (४।२।५९) से वार्त्तिक में ठक् प्रत्यय हुआ है ।।

जातिरप्राणिनाम् ।।२।४।६।।

जातिः १।१।। अप्राणिनाम् ६।३।। स०—न प्राणिनः अप्राणिनः, तेषां, नञ्तत्पुरुषः ।। अनु०—द्वन्द्वः, एकवचनम् ।। अर्थः—अप्राणिवाचिनां जातिशब्दानां द्वन्द्व एकवद् भवति ।। उदा०—आराशस्त्रि । धानाशष्कुलि । खट्वापीठम् । घटपटम् ।।

भाषार्थः—[अप्राणिनाम्] प्राणिरहित [जातिः] जातिवाची शब्दों का जो द्वन्द्व है, उसे एकवद्भाव होता है ॥

उदा०—आराशस्त्रि (करौंत एवं आरी)। धानाशष्कुलि (सत्तु और पूरी)। खट्वापीठम् (खाट और चौकी)। घटपटम् (घड़े और कपड़े)॥ पूर्ववत् नपुंसकलिङ्ग होकर, शस्त्री और शष्कुली को ह्रस्वो नपुंसके प्राति० (१।२।४७) सूत्र से ह्रस्व हो गया है ॥

विशिष्टलिङ्गो नदी देशोऽग्रामाः ॥२।४।७॥

विशिष्टलिङ्गः १।१॥ नदी १।१॥ देशः १।१॥ अग्रामाः १।३॥ स०—विशिष्टं भिन्नं लिङ्गं यस्य स विशिष्टलिङ्गः, बहुव्रीहिः। न ग्रामाः अग्रामाः, नञ्तत्पुरुषः॥ अनु०—द्वन्द्वः, एकवचनम्॥ अर्थः—विशिष्टलिङ्गानां=भिन्नलिङ्गानां नदीवाचिनां देशवाचिनां च शब्दानां द्वन्द्व एकवद् भवति, ग्रामवाचिशब्दान् वर्जयित्वा॥ उदा०—उद्ध्यश्च इरावती च उद्ध्येरावति। गङ्गा च शोणं च गङ्गाशोणम्। देशः—कुरवश्च कुरुक्षेत्रञ्च कुरुकुरुक्षेत्रम्। कुरुकुरुजाङ्गलम्॥

भाषार्थः—[विशिष्टलिङ्गः] भिन्नलिङ्गवाले [नदी] नदीवाची, तथा [देशः] देशवाची शब्दों का जो द्वन्द्व है, उसे एकवद्भाव होता है, [अग्रामाः] ग्रामवाची शब्दों को छोड़कर॥

उदा०—उद्ध्येरावति (उद्ध्य[1] और इरावती)। गङ्गाशोणम् (गङ्गा तथा सोन नदी)। देश—कुरुकुरुक्षेत्रम् (कुरु तथा कुरुक्षेत्र नामक देश)। कुरुकुरुजाङ्गलम् (कुरु तथा कुरुजाङ्गल देश)॥

उदाहरण में उद्ध्य पुंल्लिङ्ग तथा इरावती स्त्रीलिङ्ग है, अतः विशिष्ट=भिन्नलिङ्गवाले नदीवाची शब्द हैं। इसी प्रकार कुरु पुंल्लिङ्ग तथा कुरुक्षेत्र और कुरुजाङ्गल नपुंसकलिङ्ग हैं। सो भिन्न लिङ्गवाले देशवाची शब्द हैं। अतः एकवद्भाव होकर पूर्ववत् कार्य हुआ है। ग्राम भी देश में आ जाते हैं, अतः ग्रामवाची शब्दों को छोड़कर कह दिया है॥

---

१. उद्ध्य का वर्त्तमान नाम उझ है। यह जम्मू प्रान्त के जसरोटा जिले में होती हुई कुछ दूर पंजाब में बहकर गुरुदासपुर जिले में रावी के दाहिने किनारे पर मिल गई है। इरावती वर्त्तमान रावी का नाम है॥ देखो—पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ५२, हिन्दी सं०॥

क्षुद्रजन्तवः ॥२।४।८॥

क्षुद्रजन्तवः १।३॥ स०—क्षुद्राश्च ते जन्तवश्च क्षुद्रजन्तवः, कर्मधारयतत्पुरुषः ॥ अनु०—द्वन्द्वः, एकवचनम् ॥ अर्थः—क्षुद्रजन्तुवाचिनां शब्दानां द्वन्द्व एकवद्भवति ॥ उदा०—यूकाश्च लिक्षाश्च=यूकालिक्षम् । दंशमशकम् । कीटपिपीलिकम् ॥

भाषार्थः—[क्षुद्रजन्तवः] क्षुद्रजन्तुवाची शब्दों का द्वन्द्व एकवद्भाव को प्राप्त होता है ॥ क्षुद्र जन्तु से नेवले से लेकर सूक्ष्म जीव लिये जायेंगे । महाभाष्य में क्षुद्र की व्याख्या कई ढंग से की गई है ॥

उदा०—यूकालिक्षम् (जूं और लीख) । दंशमशकम् (डांस और मच्छर) । कीटपिपीलिकम् (कीड़ी और चिऊंटी) ॥

येषां च विरोधः शाश्वतिकः ॥२।४।९॥

येषां ६।३॥ च अ० ॥ विरोधः १।१॥ शाश्वतिकः १।१॥ अनु०—द्वन्द्वः, एकवचनम् ॥ अर्थः—येषां जीवानां शाश्वतिकः=सनातनः=सार्वकालिकः विरोधः=वैरं तद्वाचिशब्दानां द्वन्द्व एकवद् भवति ॥ उदा०—मार्जारमूषकम् । अहिनकुलम् ॥

भाषार्थः—[येषां] जिन जीवों का [शाश्वतिकः] शाश्वतिक=सनातन [विरोधः] विरोध है, तद्वाची शब्दों का द्वन्द्व [च] भी एकवद्भाव को प्राप्त होता है ॥

उदा०—मार्जारमूषकम् (बिल्ली और चूहा) । अहिनकुलम् (सांप और नेवला) ॥ बिल्ली जहाँ भी चूहे को देखेगी, उसे खा लेगी । नेवला साँप को देखते ही मार डालेगा। इस प्रकार इनका आपस में स्वाभाविक=सनातन विरोध है ॥

शूद्राणामनिरवसितानाम् ॥२।४।१०॥

शूद्राणाम् ६।३॥ अनिरवसितानाम् ६।३॥ स०—न निरवसिता अनिरवसिताः, तेषां......,नञ् तत्पुरुषः ॥ अनु०—द्वन्द्वः, एकवचनम् ॥ अर्थः—अनिरवसित-शूद्रवाचिशब्दानां द्वन्द्व एकवद्भवति ॥ यैर्भुक्ते पात्रं संस्कारेण (मार्जनेन) शुध्यति तेऽनिरवसिताः । उदा०—तक्षायस्कारम् । रजकतन्तुवायम् । रजककुलालम् ॥

भाषार्थः—[अनिरवसितानाम्] अनिरवसित [शूद्राणाम्] शूद्रवाची शब्दों का जो द्वन्द्व समास है, वह एकवद्भाव को प्राप्त होता है ॥ जिन शूद्रों के भोजन के पात्र मार्जन करने के पश्चात् शुद्ध माने जायें, वे अनिरवसित शूद्र कहे जाते हैं । तथा जिनके शुद्ध नहीं माने जाते, वे निरवसित होते हैं ॥

उदा०—तक्षायस्कारम् (बढ़ई और लुहार)। रजकतन्तुवायम् (धोबी और जुलाहा)। रजककुलालम् (धोबी और कुम्हार)॥ तक्ष अयस्कारादि अनिरवसित शूद्र[1] हैं॥

गवाश्वप्रभृतीनि च ॥२।४।११॥

गवाश्वप्रभृतीनि १।३॥ च अ०॥ स०—गवाश्वं प्रभृति येषां तानि गवाश्वप्रभृतीनि, बहुव्रीहिः॥ अनु०—द्वन्द्वः, एकवचनम्॥ अर्थः—गवाश्वप्रभृतीनि द्वन्द्वरूपाणि कृतैकवद्भावानि साधूनि भवन्ति॥ उदा०—गवाश्वम्। गवाविकम्। गवैडकम्। अजाविकम्॥

भाषार्थः—इस एकवद्भाव के अधिकार में [गवाश्वप्रभृतीनि] गवाश्च इत्यादि शब्द एकवद्भाव किये हुये जैसे पढ़े हैं, वैसे [च] ही साधु समझे जाते हैं॥ उदा०—गवाश्वम् (गौ और घोड़ा)। गवाविकम् (गौ और भेड़)। गवैडकम् (गौ और भेड़)। अजाविकम् (बकरी और भेड़)॥

गो अश्व का समास चार्थे द्वन्द्वः (२।२।२९ से) होकर, एकवद्भाव, तथा अवङ् स्फोटायनस्य (६।१।११९) से अवङ् आदेश होकर गवाश्वम् बना है॥

विभाषा वृक्षमृगतृणधान्यव्यञ्जनपशुशकुन्यश्ववडवपूर्वापराधरोत्तराणाम् ॥२।४।१२॥

विभाषा १।१॥ वृक्षमृग······धरोत्तराणाम् ६।३॥ स०—वृक्षमृग० इत्यत्र इतरेतरयोगद्वन्द्वः॥ अनु०—द्वन्द्वः, एकवचनम्॥ अर्थः—वृक्ष, मृग, तृण, धान्य, व्यञ्जन, पशु, शकुनि, अश्ववडव, पूर्वापर, अधरोत्तर इत्येतेषां द्वन्द्वो विभाषा एकवद् भवति॥ उदा०—प्लक्षाश्च न्यग्रोधाश्च प्लक्षन्यग्रोधम्, प्लक्षन्यग्रोधाः। मृग—रुरवश्च पृषताश्च रुरुपृषतम्, रुरुपृषताः। तृण—कुशकाशम्, कुशकाशाः। धान्य—व्रीहियवम्, व्रीहियवाः। व्यञ्जन—दधिघृतम्, दधिघृते। पशु—गोमहिषम्, गोमहिषाः। शकुनि—तित्तिरिकपिञ्जलम्, तित्तिरिकपिञ्जलाः। अश्ववडम्, अश्ववडवौ। पूर्वापरम्, पूर्वापरे। अधरोत्तरम्, अधरोत्तरे॥

भाषार्थः—[वृक्ष··· ······णाम्] वृक्ष, मृग, तृण, धान्य, व्यञ्जन, पशु, शकुनि, अश्ववडव, पूर्वापर, अधरोत्तर वाची शब्दों का जो द्वन्द्वसमास, वह

---

१. शूद्र वास्तव में वह होता है, जिसको पढ़ाने पर भी कुछ न आये। जन्म से तो सब शूद्र होते ही हैं, विद्या और संस्कार से द्विज बनते हैं। तक्ष और अयस्कार भी द्विज बन सकते हैं, और द्विज भी तक्ष अयस्कार बन सकते हैं, यह भी एक पक्ष है॥

[विभाषा] विकल्प से एकवद्भाव को प्राप्त होता है ।। वृक्ष, तृण, धान्य, व्यञ्जनवाचियों के द्वन्द्व में प्राणिरहित जातिवाची शब्द होने से जातिरप्राणिनाम् (२।४।६) से नित्य एकवद्भाव प्राप्त था, यहाँ विकल्प कर दिया है। शेष में किसी से प्राप्त नहीं था, विकल्प विधान कर दिया है। यह प्राप्ताप्राप्त विभाषा है ।।

उदा०—प्लक्षन्यग्रोधम्, प्लक्षन्यग्रोधाः। मृग—रुरुपृषतम् (रुरु हरिणविशेष और श्वेतबिन्दुवाला हरिण), रुरुपृषताः। तृण—कुशकाशम् (कुश और काश), कुशकाशाः। धान्य—व्रीहियवम् (चावल और जौ), व्रीहियवाः। व्यञ्जन—दधिघृतम्, (दही और घी), दधिघृते। पशु—गोमहिषम् (गायें और भैंसें), गोमहिषाः। शकुनि—तित्तिरिकपिञ्जलम् (तीतर और चातक), तित्तिरिकपिञ्जलाः। अश्ववडवम् (घोड़ा और घोड़ी), अश्ववडवौ। पूर्वापरम् (पूर्व और पर), पूर्वापरे। अधरोत्तरम् अधरोत्तरे ।। पूर्ववदश्ववडवौ (२।४।२७) से अश्ववडवौ में पूर्ववत् लिङ्ग हुआ है ।।

यहाँ से 'विभाषा' की अनुवृत्ति २।४।१३ तक जायेगी ।।

विप्रतिषिद्धं चानधिकरणवाचि ।।२।४।१३।।

विप्रतिषिद्धम् १।१।। च अ० ।। अनधिकरणवाचि १।१।। स०—अधिकरणं वक्ति इति अधिकरणवाचि, उपपदम० (२।२।१९) इत्यनेन तत्पुरुषः समासः। न अधिकरणवाचि अनधिकरणवाचि, नञ्तत्पुरुषः ।। अनु०—विभाषा, द्वन्द्वः, एकवचनम् ।। अर्थः—विप्रतिषिद्धानां=परस्परविरुद्धानाम् अनधिकरणवाचिनां=अद्रव्यवाचिनां द्वन्द्वसमास एकवद् भवति विकल्पेन ।। उदा०—शीतोष्णम्, शीतोष्णे। सुखदुःखम्, सुखदुःखे। जीवितमरणम्, जीवितमरणे ।।

भाषार्थः—[विप्रतिषिद्धम्] विप्रतिषिद्ध=परस्पर विरुद्ध [अनधिकरणवाचि] अनधिकरणवाची=अद्रव्यवाची[1] शब्दों का जो द्वन्द्व, उसको [च] भी विकल्प से एकवद्भाव होती है ।। ठण्डा और गर्म आदि शब्द परस्पर विरोधी=विप्रतिषिद्ध हैं ।। उदा०—शीतोष्णम् (ठण्डा और गरम), शीतोष्णे। सुखदुःखम् (सुख और दुःख), सुखदुःखे। जीवितमरणम् (जीना और मरना), जीवितमरणे ।।

न दधिपयआदीनि ।।२।४।१४।।

न अ० ।। दधिपयआदीनि १।३।। स०—दधि च पयश्च दधिपयसी, दधिपयसी

---

१. अधिकरण किसी द्रव्य=मूर्त्त पदार्थ का ही हो सकता है, क्रिया या गुण का नहीं। अतः यहाँ अधिकरण शब्द से द्रव्य लिया गया है, अनधिकरणवाची का अर्थ हुआ अद्रव्यवाची ।।

आदिनी येषां, तानि दधिपयआदीनि, द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः ॥ अनु० -द्वन्द्वः, एकवचनम् । अर्थः—दधिपयआदीनि द्वन्द्वशब्दरूपाणि न एकवद्भवन्ति । उदा०—दधिपयसी । सर्पिर्मधुनी । मधुसर्पिषी ॥

भाषार्थः—[दधिपयआदीनि] दधिपयसी आदि शब्दों को एकवद्भाव [न] नहीं होता है ॥

उदा०—दधिपयसी (दही और दूध)। सर्पिर्मधुनी (घी और शहद)। मधुसर्पिषी ॥ व्यञ्जनवाची होने से उदाहरणों में विभाषा वृक्ष० (२।४।१२) से एकवद्भाव प्राप्त था, निषेध कर दिया है। गण के और शब्दों में भी पूर्वसूत्रों से एकवद्भाव प्राप्त होने पर यह निषेधसूत्र है ॥

यहाँ से 'न' की अनुवृत्ति २।४।१५ तक जायेगी ॥

अधिकरणैतावत्त्वे च ॥२।४।१५॥

अधिकरणैतावत्त्वे ७।१॥ च अ० ॥ स०—एतावतो भावः एतावत्त्वम्, अधिकरणस्य एतावत्त्वम् अधिकरणैतावत्त्वं, तस्मिन्......,षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—न, द्वन्द्वः, एकवचनम् ॥ अर्थः—अधिकरणैतात्त्वे गम्यमाने द्वन्द्वः एकवद् न भवति ॥ समासावयवभूतपदानाम् अर्थोऽधिकरणम् उच्यते, तस्य एतावत्त्वं परिमाणं=संख्या ॥ उदा०—चत्वारो हस्तपादाः । दश दन्तोष्ठाः ॥

भाषार्थः—[अधिकरणैतावत्त्वे] अधिकरण का परिमाण कहने में, जो द्वन्द्व समासः, वह [च] भी एकवद्भाव को प्राप्त नहीं होता है ॥

उदा०—चत्वारो हस्तपादाः (चार हाथ और पैर)। दश दन्तोष्ठाः (दस दाँत और ओठ) ॥

यहाँ समास के अवयवभूत पद हाथ पैर वा दन्तोष्ठ के अर्थ समास के अधिकरण हैं। उन हाथ पैर तथा दन्तोष्ठों की इयत्ता=परिमाण चार तथा दस से प्रकट हो रही है। इस प्रकार अधिकरण का एतावत्त्व कहा जा रहा है ॥ प्राणियों का अवयव होने से द्वन्द्वश्च प्राणि० (२।४।२) से एकवद्भाव प्राप्त था, यहाँ इयत्ता गम्यमान होने पर निषेध कर दिया है ॥

यहाँ से 'अधिकरणैतावत्त्वे' की अनुवृत्ति २।४।१६ तक जायेगी ॥

विभाषा समीपे ॥२।४।१६॥

विभाषा १।१॥ समीपे ७।१॥ अनु०—अधिकरणैतावत्त्वे, द्वन्द्वः, एकवचनम् ॥ अर्थः—अधिकरणैतावत्त्वस्य समीपेऽर्थे गम्यमाने द्वन्द्वः विभाषा एकवद् भवति ॥

उदा०—उपदशं दन्तोष्ठम्, उपदशाः दन्तोष्ठाः। उपदशं जानुजङ्घम्। उपदशाः जानुजङ्घाः॥

भाषार्थः—अधिकरण के एतावत्त्व का [समीपे] समीप अर्थ कहना हो, तो द्वन्द्व समास में [विभाषा] विकल्प से एकवद्भाव होता है॥ पूर्व सूत्र से नित्य-निषेध प्राप्त था, विकल्प कर दिया॥

उदा०—उपदशं दन्तोष्ठम् (दश के लगभग दाँत और ओठ), उपदशाः दन्तोष्ठाः। उपदशं जानुजङ्घम् (दश के लगभग घुटने और जङ्घा), उपदशाः जानुजङ्घाः॥ दन्तोष्ठ आदि अधिकरण (द्रव्य) हैं। उनका एतावत्त्व दश से प्रकट हो रहा है, तथा उप से समीप अर्थ भी प्रतीत हो रहा है॥

[लिङ्ग-प्रकरणम्]

स नपुंसकम् ॥२।४।१७॥

सः १।१॥ नपुंसकम् १।१॥ अर्थः—अस्मिन् एकवद्भावप्रकरणे यस्य एकवद्भावो विहितः, स नपुंसकलिङ्गो भवति॥ उदा०—पञ्चगवम्। दशगवम्। द्वन्द्वः—पाणिपादम्। शिरोग्रीवम्॥

भाषार्थः—इस एकवद्भाव-प्रकरण में जिस (द्विगु और द्वन्द्व) को एकवद्भाव विधान किया है, [सः] वह [नपुंसकम्] नपुंसकलिङ्ग होता है॥ तत्-तत् सूत्र में इसके उदाहरण आ ही गये हैं॥ पञ्चगवम् में तद्धितार्थोत्तर० (२।१।५०) से समास, तथा संख्यापूर्वो० (२।१।१०) से द्विगु संज्ञा, एवं गोरतद्धितलुकि (५।४।९२) से समासान्त टच् प्रत्यय भी हुआ है। पश्चात् अवादेश होकर पञ्चगवम् बना है। द्विगुरेकवचनम् (२।४।१) से एकवद्भाव होकर नपुंसकलिङ्ग होता है॥

यहाँ से 'नपुंसकम्' की अनुवृत्ति २।४।२५ तक जायेगी॥

अव्ययीभावश्च ॥२।४।१८॥

अव्ययीभावः १।१॥ च अ०॥ अनु०—नपुंसकम्॥ अर्थः—अव्ययीभावः समासो नपुंसकलिङ्गो भवति॥ उदा०—अधिस्त्रि। उपकुमारि। उन्मत्तगङ्गम्। लोहितगङ्गम्॥

भाषार्थः—[अव्ययीभावः] अव्ययीभाव समास [च] भी नपुंसकलिङ्ग होता है॥ नपुंसकलिङ्ग होने से १।२।४७ से ह्रस्व हो जाता है। अधिस्त्रि की सिद्धि

परि० १।१।४० में देखें। उन्मत्तगङ्गम् में अन्यपदार्थे० (२।१।२०) से समास हुआ है। नपुंसकलिङ्ग होने से पूर्ववत् ह्रस्व हो गया ॥

तत्पुरुषोऽनञ्कर्मधारयः ॥२।४।१६॥

तत्पुरुषः १।१॥ अनञ्कर्मधारयः १।१॥ स०—नञ् च कर्मधारयश्च नञ्कर्मधारयः, समाहारो द्वन्द्वः। न नञ्कर्मधारयः अनञ्कर्मधारयः, नञ्तत्पुरुषः ॥ **अनु०**—नपुंसकम् ॥ **अर्थः**—नञ्तत्पुरुषं कर्मधारयतत्पुरुषं च विहाय योऽन्यस्तत्पुरुषसमासः स नपुंसकलिङ्गो भवति, इत्यधिकारो वेदितव्यः ॥ **उदा०**—ब्राह्मणानां सेना ब्राह्मणसेनम्, ब्राह्मणसेना। असुरसेनम्, असुरसेना ॥

भाषार्थः—[अनञ्कर्मधारयः] नञ्तत्पुरुष तथा **कर्मधारय तत्पुरुष को छोड़कर, जो अन्य** [तत्पुरुषः] **तत्पुरुष, वह नपुंसकलिङ्ग में होता है। यह अधिकार २।४।२५ तक जानना चाहिये ॥**

उदा०—**ब्राह्मणसेनम्, ब्राह्मणसेना (ब्राह्मणों की सेना)। असुरसेनम्, असुरसेना (असुरों की सेना) ॥**

संज्ञायां कन्थोशीनरेषु ॥२।४।२०॥

संज्ञायाम् ७।१॥ कन्था १।१॥ उशीनरेषु ७।३॥ **अनु०**—तत्पुरुषोऽनञ्कर्मधारयः, नपुंसकम् ॥ **अर्थः**—संज्ञायां विषये अनञ्कर्मधारयः कन्थान्तस्तत्पुरुषो नपुंसकलिङ्गो भवति, सा चेत्कन्था उशीनरेषु[1] भवति ॥ **उदा०**—सौशमीनां कन्था सौशमिकन्थम्। आह्वरकन्थम् ॥

भाषार्थः—[संज्ञायाम्] **संज्ञाविषय में नञ तथा कर्मधारय तत्पुरुष को छोड़कर** [कन्था] **कन्थान्त तत्पुरुष नपुंसकलिङ्ग में होता है,** [उशीनरेषु] **यदि वह कन्था उशीनर जनपद सम्बन्धी हो। कन्था[2] नगर को कहते हैं ॥**

उदा०—**सौशमिकन्थम् (सौशमि लोगों का नगर)। आह्वरकन्थम् (आह्वर लोगों का नगर)। नपुंसकलिङ्ग होने से ह्रस्वो नपुंसके० (१।२।४७) से ह्रस्व हो गया है ॥**

उपज्ञोपक्रमं तदाद्याचिख्यासायाम् ॥२।४।२१॥

उपज्ञोपक्रमम् १।१॥ तदाद्याचिख्यासायाम् ७।१॥ उपज्ञायतेऽसौ उपज्ञा।

---

१. उशीनर एक जनपद (जिला) का नाम था। सम्भवतः यह रावी और चनाव के बीच का निचला भूभाग था। देखो—पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ६८ ॥

२. देखो—पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ८२ ॥

उपक्रम्यतेऽसौ उपक्रमः ॥ स०—उपज्ञा च उपक्रमश्च उपज्ञोपक्रमम्, समाहारो द्वन्द्वः । आख्यातुमिच्छा=आचिख्यासा । तयोः (उपज्ञोपक्रमयोः) आदिः तदादिः, षष्ठीतत्पुरुषः । तदादेः आचिख्यासा तदाद्याचिख्यासा, तस्याम्, षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—तत्पुरुषोऽनञ्कर्मधारयः, नपुंसकम् ॥ अर्थः—अनञ्कर्मधारयः उपज्ञान्त उपक्रमान्तश्च तत्पुरुषो नपुंसकलिङ्गो भवति, यदि तयोः उपज्ञोपक्रमयोरादेः=प्रथमस्य आचिख्यासा भवेत् ॥ उदा०—पाणिनेः उपज्ञा पाणिन्युपज्ञम् अकालकं व्याकरणम् । व्याड्युपज्ञं दुष्करणम्[1] । नन्दोपक्रमाणि मानानि ॥

भाषार्थः—[उपज्ञोपक्रमम्] उपज्ञान्त तथा उपक्रमान्त तत्पुरुष नपुंसकलिङ्ग में होता है, नञ्कर्मधारय तत्पुरुष को छोड़कर [तदाद्याचिख्यासायाम्] यदि उपज्ञेय तथा उपक्रम्य के आदि=प्रथमकर्त्ता को कहने की इच्छा हो ॥ उपज्ञा किसी नई सूझ को कहते हैं, तथा उपक्रम किसी चीज के प्रारम्भ करने को कहते हैं । उपज्ञा तथाक्रम में भेद इतना है कि उपज्ञा सर्वथा नई वस्तु नहीं होती, किन्तु उसमें कोई विशेष सूझ ही होती है । जैसे कि पाणिनि से पूर्व भी और व्याकरण थे, उसमें केवल 'अकालक व्याकरण' बनाने की उपज्ञा पाणिनि ने की है । किन्तु उपक्रम सर्वथा नये निर्माण को कहते हैं । जैसे बाटों का नया प्रारम्भ नन्द का ही है ॥

उदा०—पाणिन्युपज्ञम् अकालकं व्याकरणम् (काल की परिभाषा से रहित व्याकरणरचना पाणिनि की ही उपज्ञा है) । व्याड्युपज्ञं दुष्करणम् (दुष्करण नामक विधि व्याडि की उपज्ञा है) । नन्दोपक्रमाणि मानानि (नन्द ने पहले-पहल तौलने के बाटों का प्रारम्भ किया) ॥

छाया बाहुल्ये ।२।४।२२॥

छाया १।१॥ बाहुल्ये ७।१॥ अनु०—तत्पुरुषोऽनञ्कर्मधारयः, नपुंसकम् ॥ अर्थः—बाहुल्ये=बहुत्वे गम्यमाने अनञ्कर्मधारयश्छायान्तस्तत्पुरुषो नपुंसकलिङ्गो भवति ॥ उदा०—शलभच्छायम् । इक्षुच्छायम् ॥

भाषार्थः—[बाहुल्ये] बाहुल्य अर्थात् बहुत्व गम्यमान हो, तो नञ्कर्मधारय तत्पुरुष को छोड़कर [छाया] छायान्त जो तत्पुरुष है, वह नपुंसकलिङ्ग में होता है ॥

उदा०—शलभच्छायम् (पतंगों की छाया) । इक्षुच्छायम् (ईख की छाया) ॥ उदाहरणों में शलभ इत्यादि का बाहुल्य प्रकट हो रहा है ॥ विभाषा सेनासुराच्छाया०

---

१. न्यास में इसी सूत्र पर 'दशहुष्करणम्' पाठ है । इस से प्रतीत होता है कि व्याडि के ग्रन्थ में दस स्थलों पर हुष्करण था । दुष्करण अथवा हुष्करण वैसी ही विधि है, जैसी धातुपाठ में 'वृत्करणविधि उपलब्ध होती है ॥

(२।४।२५) से विकल्प से छायान्त तत्पुरुष को नपुंसकलिङ्ग प्राप्त था। यहाँ बाहुल्य गम्यमान होने पर नित्य विधान कर दिया है ॥

सभा राजाऽमनुष्यपूर्वा ॥२।४।२३॥

सभा १।१॥ राजाऽमनुष्यपूर्वा १।१॥ स०—न मनुष्यः अमनुष्यः, नञ्-तत्पुरुषः। राजा च अमनुष्यश्च राजामनुष्यौ, इतरेतरयोगद्वन्द्वः। राजामनुष्यौ पूर्वौ यस्याः सा राजाऽमनुष्यपूर्वा (सभा), बहुव्रीहिः ॥ अनु०—तत्पुरुषोऽनञ्कर्मधारयः, नपुंसकम् ॥ अर्थः—अनञ्कर्मधारयः सभान्तस्तत्पुरुषो नपुंसकलिङ्गो भवति, सा चेत् सभा राजपूर्वा अमनुष्यपूर्वा च भवति ॥ उदा०—इनसभम्। ईश्वरसभम्। अमनुष्य-पूर्वा—रक्षःसभम्। पिशाचसभम् ॥

भाषार्थः—नञ्कर्मधारय तत्पुरुष को छोड़कर [राजाऽमनुष्यपूर्वा] राजा और अमनुष्य पूर्वपदवाला जो [सभा] सभान्त तत्पुरुष, वह नपुंसकलिङ्ग में होता है ॥

यहाँ स्वं रूपं शब्द० (१।१।६८) से राजा शब्द का ही ग्रहण होना चाहिये, उसके पर्यायों का नहीं। किन्तु जित्पर्यायवचनस्यैव, राजाद्यर्थम् (वा० १।१।६८) इस वार्त्तिक से राजा के पर्यायों का ही ग्रहण होता है, राजा शब्द का नहीं। रक्षः पिशाच मनुष्य नहीं हैं ॥

उदा०—इनसभम् (राजा की सभा)। ईश्वरसभम्। अमनुष्यपूर्वा—रक्षः-सभम् (राक्षसों की सभा)। पिशाचसभम् ॥

यहाँ से 'सभा' की अनुवृत्ति २।४।२४ तक जायेगी ॥

अशाला च ॥२।४।२४॥

अशाला १।१॥ च अ० ॥ स०—न शाला अशाला, नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—सभा, तत्पुरुषोऽनञ्कर्मधारयः, नपुंसकम् ॥ अर्थः—शालाभिन्ना या सभा तदन्तो नञ्-कर्मधारयभिन्नस्तत्पुरुषो नपुंसकलिङ्गो भवति ॥ उदा०—स्त्रीणां सभा स्त्रीसभम्। दासीसभम् ॥

भाषार्थः—[अशाला] शाला अर्थ से भिन्न जो सभा तदन्त नञ्कर्मधारयभिन्न तत्पुरुष [च] भी नपुंसकलिङ्ग में होता है ॥

उदा०—स्त्रीसभम् (स्त्रियों की सभा)। दासीसभम् (दासियों की सभा)। स्त्रीसभम् आदि में शाला नहीं कहा जा रहा है, स्त्रियों का समुदाय कहा जा रहा है ॥

विभाषा सेनासुराच्छायाशालानिशानाम् ॥२।४।२५॥

विभाषा १।१॥ सेनासुराच्छायाशालानिशानाम् ६।३॥ स०—सेना च सुरा च छाया च शाला च निशा च सेनासुराच्छायाशालानिशा:, तासाम्, इतरेतरयोगद्वन्द्व: ॥ अनु०—तत्पुरुषोऽनञ् कर्मधारय:, नपुंसकम् ॥ अर्थ:—सेना, सुरा, छाया, शाला, निशा इत्येतदन्तोऽनञ् कर्मधारयस्तत्पुरुषो विकल्पेन नपुंसकलिङ्गो भवति ॥ उदा०—ब्राह्मणसेनम्, ब्राह्मणसेना। असुरसेनम्, असुरसेना। यवसुरम्, यवसुरा। कुडच्यच्छायम्, कुडच्यच्छाया। गोशालम्, गोशाला। श्वनिशम्, श्वनिशा ॥

भाषार्थ:—[सेनासुराच्छायाशालानिशानाम्] सेना, सुरा, छाया, शाला, निशा अन्तवाला जो नञ् और कर्मधारय को छोड़कर तत्पुरुष समास वह नपुंसकलिङ्ग में [विभाषा] विकल्प से होता है ॥ पूर्व सूत्रों में से किसी से नपुंसकलिङ्ग नहीं प्राप्त था, सो यहाँ अप्राप्त-विभाषा है ॥

उदा०—ब्राह्मणसेनम्, ब्राह्मणसेना। असुरसेनम्, असुरसेना (असुरों की सेना)। यवसुरम् (जौ की शराब), यवसुरा। कुडच्यच्छायम् (दीवार की (छाया), कुडच्यच्छाया। गोशालम् (गोशाला), गोशाला। श्वनिशम् (कुत्तों की रात), श्वनिशा ॥

परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयो: ॥२।४।२६॥

परवत् अ० ॥ लिङ्गम् १।१॥ द्वन्द्वतत्पुरुषयो: ६।२॥ परस्य इव परवत्, षष्ठ्यर्थे तत्र तस्येव (५।१।११५) वति: ॥ स०-द्वन्द्वश्च तत्पुरुषश्च द्वन्द्वतत्पुरुषौ, तयो: ..... ,इतरेतरयोगद्वन्द्व: ॥ अर्थ:—द्वन्द्वसमासस्य तत्पुरुषसमासस्य च परस्येव लिङ्गं भवति ॥ उदा०—कुक्कुटश्च मयूरी च कुक्कुटमयूर्यौ इमे, मयूरीकुक्कुटौ इमौ। गुणवृद्धी वृद्धिगुणौ। तत्पुरुषे—अर्धं पिप्पल्या: अर्धपिप्पली, अर्धकोशातकी, अर्धनखरञ्जनी ॥

भाषार्थ: [द्वन्द्वतत्पुरुषयो:] द्वन्द्व तथा तत्पुरुष समास का [परवत्] पर के समान अर्थात् उत्तरपद का [लिङ्गम्] लिङ्ग होता है ॥ समास में जब प्रत्येक पद भिन्न लिङ्गोंवाले होते हैं तो कौन लिङ्ग हो? द्वन्द्व समास में तो सारे पद प्रधान होते हैं, सो किसी भी पद का लिङ्ग हो सकता था। अत: नियम किया कि परवत् लिङ्ग ही हो। तथा तत्पुरुषसमास तो उत्तरपद प्रधान ही होता है, सो परवत् लिङ्ग सिद्ध ही था, पुन: एकदेशी तत्पुरुष समास के लिए यहाँ परवत् लिङ्ग कहा है। क्योंकि वह उत्तरपद प्रधान नहीं होता ॥

उदा०—कुक्कुटमयूर्यौ इमे (मुर्गा और मोरनी), मयूरीकुक्कुटौ इमौ। गण-

वृद्धी, वृद्धिगुणौ । तत्पुरुष में—अर्धपिप्पली । अर्धकोशातकी । अर्धनखरञ्जनी (मेंहदी का आधा भाग) ॥

उदाहरण में मयूरी पद जब उत्तरपद है, तबपर वत् लिङ्ग होने से स्त्रीलिङ्ग तथा जब कुक्कुट उत्तरपद है, तब परवत लिङ्ग होकर पुँल्लिङ्ग हो गया है। इसी प्रकार गणवृद्धी में भी जानें। गुणवृद्धी वृद्धिगुणौ, राजदन्तादि (२।२।३१) में पढ़ा है॥ अर्धं नपुंसकम् (२।२।२) से अर्धपिप्पली आदि में समास हुआ है ॥

पूर्ववदश्ववडवौ ॥२।४।२७॥

पूर्ववत् अ० ॥ अश्ववडवौ १।२॥ स०—अश्वश्च वडवा च अश्ववडवौ, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ **अर्थः**—अश्ववडवशब्दयोः पूर्ववत् लिङ्गं भवति ॥ **विभाषा** वृक्षमृग० (२।४।१२) इत्यनेन अश्ववडवशब्दयोः एकवद्भावो विकल्पेनोक्तः, तत्रैकवद्भावादन्यत्र परवल्लिङ्गतायां प्राप्तायामिदमारभ्यते ॥ उदा०—अश्ववडवौ ॥

भाषार्थः—[अश्ववडवौ] अश्व वडवा शब्दों के द्वन्द्व समास में [पूर्ववत्] पूर्ववत् लिङ्ग हो ॥ पूर्वसूत्र से परवत् लिङ्ग प्राप्त था, उसका अपवाद विधान किया है॥ विभाषा वृक्षमृग०(२।४।१२)सूत्र से अश्व वडव शब्दों को विकल्प से एकवद्भाव कहा है। सो एकवद्भावपक्ष में तो स नपुंसकम्(२।४।१७)से नपुंसकलिङ्ग हो गया। जिस पक्ष में एकवद्भाव नहीं हुआ, उस पक्ष में इस सूत्र की प्रवृत्ति होती है। पूर्ववत् लिङ्ग कहने से समास को अश्व के समान लिङ्ग हो गया। यहाँ विभाषा वृक्ष० सूत्र में पठित होने से वडवा के टाप् की निवृत्ति हो जाती है॥

यहाँ से 'पूर्ववत्' की अनुवृत्ति २।४।२८ तक जायेगी॥

हेमन्तशिशिरावहोरात्रे च च्छन्दसि ॥२।४।२८॥

हेमन्तशिशिरौ १।२॥ अहोरात्रे १।२॥ च अ० ॥ छन्दसि ७।१॥ स०—हेमन्तश्च शिशिरं च हेमन्तशिशिरौ, इतरेतरयोगद्वन्द्वः । अहश्च रात्रिश्च अहोरात्रे, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—पूर्ववत् ॥ **अर्थः**—हेमन्तशिशिरशब्दयोः अहोरात्रशब्दयोश्च द्वन्द्वसमासे छन्दसि विषये पूर्ववत् लिङ्गं भवति ॥ उदा०—हेमन्तशिशिरावृतू । वर्चो द्रविणाम (यजु० १०।१४) । अहोरात्रे ऊर्ध्वष्ठीवे (यजु० १८।२३) । अहानि च रात्रयश्च अहोरात्राणि ॥

भाषार्थः—[हेमन्तशिशिरौ] हेमन्त और शिशिर शब्द, [च] तथा [अहोरात्रे] अहन् और रात्रि शब्दों का द्वन्द्व समास में [छन्दसि] छन्दविषय में पूर्ववत् लिङ्ग होता है॥ यहाँ परवत् लिङ्ग प्राप्त था, पूर्ववत् लिङ्ग कर दिया है। हेमन्त पुल्लिङ्ग है, शिशिर नपुंसकलिङ्ग है, पूर्ववत् लिङ्ग करने से हेमन्तशिशिरौ पुँल्लिङ्ग

हो गया। इसी प्रकार अहः नपुंसक लिङ्ग है और रात्रि स्त्रीलिङ्ग है, सो पूर्ववत् लिङ्ग होकर अहोरात्रे नपुंसकलिङ्ग हो गया है ॥

रात्राह्नाहाः पुंसि ॥२।४।२९॥

रात्राह्नाहाः १।३॥ पुंसि ७।१॥ स०—रात्रश्च अह्नश्च अहश्च रात्राह्नाहाः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अर्थः—रात्र अह्न अह इत्येतेषां पुंस्त्वं भवति ॥ रात्राह्नाहानां कृतसमासान्तानां ग्रहणम् ॥ उदा०—द्वयो रात्र्योः समाहारः द्विरात्रः। त्रिरात्रः। चतूरात्रः। पूर्वाह्णः। अपराह्णः। मध्याह्नः। द्व्यहः। त्र्यहः ॥

भाषार्थः—[रात्राह्नाहाः] रात्र अह्न अह इन कृतसमासान्त शब्दों को [पुंसि] पुंलिङ्ग होता है॥ परवल्लिङ्गं० (२।४।२६) का अपवाद यह सूत्र है॥

अपथं नपुंसकम् ॥२।४।३०॥

अपथम् १।१॥ नपुंसकम् १।१॥ अर्थः—अपथशब्दो नपुंसकलिङ्गो भवति ॥ उदा०—अपथम् इदम्। अपथानि गाहते मूढः ॥

भाषार्थः—नञ्समास किया हुआ जो [अपथम्] अपथ शब्द है, वह [नपुंसकम्] नपुंसकलिङ्ग में हो ॥ उदा०—अपथम् इदम् (यह कुमार्ग है)। अपथानि गाहते मूढः ॥

यहाँ से 'नपुंसकम्' की अनुवृत्ति २।४।३१ तक जायेगी ॥

अर्धर्चाःपुंसि च ॥२।४।३१॥

अर्धर्चाः १।३॥ पुंसि ७।१॥ च अ० ॥ अनु०—नपुंसकम् ॥ अर्थः—अर्धर्चादयः शब्दाः पुंसि, चकारात् नपुंसके च भवन्ति ॥ उदा०—अर्धर्चः, अर्धर्चम्। गोमयः, गोमयम् ॥

भाषार्थः—[अर्धर्चाः] अर्धर्चादि शब्द [पुंसि] पुंल्लिङ्ग में, [च] चकार से नपुंसकलिङ्ग में भी होते हैं॥ अर्धर्चाः में बहुवचन निर्देश होने से अर्धर्चादिगण लिया गया है ॥

उदा०—अर्धर्चः (आधी ऋचा), अर्धर्चम्। गोमयः (गाय का गोबर), गोमयम् ॥

[अन्वादेश-प्रकरणम्]

इदमोऽन्वादेशेऽशनुदात्तस्तृतीयादौ ॥२।४।३२॥

इदमः ६।१॥ अन्वादेशे ७।१॥ अश् १।१॥ अनुदात्तः १।१॥ तृतीयादौ ७।१॥

आदिश्यते इति आदेशः, पश्चात् आदेशः अन्वादेशः ।। स०—तृतीया आदिर्यस्याः सा तृतीयादिः, तस्यां......,बहुव्रीहिः ॥ अर्थः—अन्वादेशे वर्त्तमानस्य इदंशब्दस्य तृतीयादौ विभक्तौ परतः अनुदात्तः 'अश्' आदेशो भवति ।। उदा०—आभ्यां छात्राभ्यां रात्रिरधीता (आदेशवाक्यम्), अथो आभ्यामहरप्यधीतम् । अस्मै छात्राय कम्बलं देहि, अथोऽस्मै शाटकमपि देहि । अस्य छात्रस्य शोभनं शीलम्, अथोऽस्य प्रभूतं स्वम् ।।

भाषार्थः—[अन्वादेशे] अन्वादेश में जो वर्त्तमान [इदमः] इदम् शब्द, उसको [अनुदात्तः] अनुदात्त [अश्] अश् आदेश होता है, [तृतीयादौ] तृतीयादि विभक्तियों के परे रहते ।।

उदा०—आभ्यां छात्राभ्यां रात्रिरधीता (आदेशवाक्य), अथो आभ्यामहरप्यधीतम् (इन छात्रों के द्वारा रातभर पढ़ा गया, तथा इन छात्रों ने दिन में भी पढ़ा) । अस्मै छात्राय कम्बल देहि, अथोऽस्मै शाटकमपि देहि (इस छात्र को कम्बल दो, तथा इसे धोती भी दो) । अस्य छात्रस्य शोभनं शीलम्, अथोऽस्य प्रभूतं स्वम् (इस छात्र की सुशीलता अच्छी है, और यह धनवान् भी है) ।।

कहे हुये वाक्य के पीछे उसी को कुछ और कहने को 'अन्वादेश' कहते हैं ।। उदाहरण में 'आभ्यां छात्राभ्यां रात्रिरधीता' यह आदेशवाक्य है, उसके पश्चात् उन्हीं छात्रों के विषय में कुछ और कहा है, सो यह अन्वादेश है । इसी प्रकार और उदाहरणों में भी समझें ।। भ्याम् इत्यादि तृतीयादि विभक्तियों के परे रहते अश् आदेश हो गया है । अश् आदेश होने पर रूप में भेद नहीं होता है । केवल स्वर का ही भेद है । जब अव्ययसर्व० (५।३।७१) से अकच् करेंगे, उस समय रूप में भी भेद होता है ।। शित् होने से अश् सारे इदम् के स्थान में होता है । अन्वादेश से अन्यत्र ऊडिदम्पदाद्यप्पुम्रैद्युभ्यः (६।१।१६५) से विभक्ति को उदात्त होकर आभ्याम् ऐसा स्वर रहेगा । अन्वादेश स्थल में अनुदात्त अश् आदेश होकर विभक्ति को भी अनुदात्तौ सुप्पितौ (३।१।३) से अनुदात्त हो गया । सो आभ्याम् ऐसा स्वर रहा । अन्वादेश स्थल में ऊडिदम्प० (६।१।१६५) नहीं लगता । क्योंकि वह अन्तोदात्त से उत्तर विभक्ति को उदात्त करता है, यहाँ अनुदात्त अश् से उत्तर है ।।

यहाँ से 'इदमोऽन्वादेशे, अनुदात्तः' की अनुवृत्ति २।४।३४ तक जायेगी । तथा 'अश्' की अनुवृत्ति २।४।३३ तक जायेगी ।।

एतदस्त्रतसोस्त्रतसौ चानुदात्तौ ।।२।४।३३।।

एतदः ६।१।। त्रतसोः ७।२।। त्रतसौ १।२।। च अ० ॥ अनुदात्तौ १।२।। स०—त्रश्च तश्चेति त्रतसौ, तयोः......,इतरेतरयोगद्वन्द्वः । एवं त्रतसावपि ॥ अनु०—

अन्वादेशेऽशनुदात्तः ॥ अर्थः—अन्वादेशे वर्त्तमानस्य 'एतद्' शब्दस्य त्रतसोः प्रत्यययोः परतोऽनुदात्तः 'अश्' आदेशो भवति, तौ चापि त्रतसावनुदात्तौ भवतः ॥ उदा०—एतस्मिन् ग्रामे सुखं वसामः, अथो अत्र युक्ता अधीमहे । एतस्मात् छात्रात् छन्दोऽधीष्व, अथो अतो व्याकरणमप्यधीष्व ॥

भाषार्थः—अन्वादेशविषय में वर्त्तमान जो [एतदः] एतद् शब्द, उसे अनुदात्त अश् आदेश होता है, [त्रतसोः] त्र तस् प्रत्ययों के परे रहते, [च] और वे [त्रतसौ] त्र तस् प्रत्यय [अनुदात्तौ] अनुदात्त भी होते हैं ॥ इदम् की अनुवृत्ति का सम्बन्ध इस सूत्र में नहीं लगता, अगले सूत्र में लगेगा ॥

उदा०—एतस्मिन् ग्रामे सुखं वसामः, अथो अत्र युक्ता अधीमहे (इस ग्राम में हम सुख से रहते हैं, और यहाँ लगकर पढ़ते भी हैं) । एतस्मात् छात्रात् छन्दोऽधीष्व, अथो अतो व्याकरणमप्यधीष्व (इस छात्र से छन्द पढ़ो, और इससे व्याकरण भी पढ़ो)॥

'अथो अत्र' 'अथो अतः' ये अन्वादेश हैं। अतः त्र (५।३।१०), तस् (५।३।७) के परे रहते एतद् को अश् आदेश होकर अत्र और अतः बना ॥ लिति(६।१।१८७)से प्रत्यय से पूर्व को उदात्त प्राप्त था, अनुदात्त विधान कर दिया है ॥

यहाँ से 'एतदः' की अनुवृत्ति २।४।३४ तक जायेगी ॥

द्वितीयाटौस्स्वेनः ॥२।४।३४॥

द्वितीयाटौस्सु ७।३॥ एनः १।१॥ स०—द्वितीया च टा च ओस् च द्वितीयाटौसः, तेषु ······,इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—एतदः, इदमोऽन्वादेशे अनुदात्तः ॥ अर्थः—द्वितीया टा ओस् इत्येतासु विभक्तिषु परतोऽन्वादेशे वर्त्तमानयोः इदमेतद्-शब्दयोरनुदात्त 'एन' आदेशो भवति ॥ उदा०—इमं छात्रं छन्दोऽध्यापय, अथो एनं व्याकरणमध्यापय । टा—अनेन छात्रेण रात्रिरधीता, अथो एनेन अहरप्यधीतम् । ओस्—अनयोश्छात्रयोः शोभनं शीलम्, अथो एनयोः प्रभूतं स्वम् ॥ एतदः—एतं छात्रं छन्दोऽध्यापय, अथो एनं व्याकरणमध्यापय । एतेन छात्रेण रात्रिरधीता, अथो एनेन अहरप्यधीतम् । एतयोश्छात्रयोः शोभना प्रकृतिः, अथो एनयोः मृदुवाणी ॥

भाषार्थः—[द्वितीयाटौस्सु] द्वितीया, टा, ओस् विभक्तियों के परे रहते अन्वादेश में वर्त्तमान जो इदम् तथा एतद् शब्द उनको अनुदात्त [एनः] एन आदेश होता है ॥ उदा०—इमं छात्रं छन्दोऽध्यापय, अथो एनं व्याकरणमध्यापय (इस छात्र को छन्द पढ़ाओ, और इसे व्याकरण भी पढ़ाओ) । टा—अनेन छात्रेण रात्रिरधीता,

अथो एनेन अहरप्यधीतम् (इस छात्र ने रात्रिभर पढ़ा, और इसने दिन में भी पढ़ा)। ओस—अनयोश्छात्रयोः शोभनं शीलम्, अथो एनयोः प्रभूतं स्वम् (इन दोनों छात्रों का स्वभाव अच्छा है, और ये खूब धनवाले भी हैं)॥ एतद् का—एतं छात्रं छन्दोऽध्यापय, अथो एनं व्याकरणमध्यापय। एतेन छात्रेण रात्रिरधीता, अथो एनेन अहरप्यधीतम्। एतयोश्छात्रयोः शोभना प्रकृतिः, अथो एनयोः मृदुवाणी॥

एन+अम्=एनम्, एन(टा) इन=एनेन, एन+ओस्=एनयोः, अन्वादेश विषय में हो गया है॥

[आर्धधातुक-प्रकरणम्]

आर्धधातुके॥२।४।३५॥

आर्धधातुके ७।१॥ अर्थः—'आर्धधातुके' इत्यधिकारसूत्रम्॥ इतोऽग्रे वक्ष्यमाणानि कार्याणि आर्धधातुकविषये भवन्तीति वेदितव्यम्॥ अग्रे उदाहरिष्यामः॥

भाषार्थः—यह अधिकारसूत्र है, २।४।५७ तक जायेगा॥ यहाँ से आगे जो कार्य कहेंगे, वे [आर्धधातुके] आर्धधातुक विषय में होंगे। आर्धधातुक में विषय-सप्तमी है, अर्थात् आगे आर्धधातुक का विषय आयेगा, यह मानकर (परे न हो तो भी) आर्धधातुक आने से पहले ही कार्य होंगे।

विशेष—सप्तमी तीन प्रकार की होती है। पर-सप्तमी, विषय-सप्तमी, निमित्त-सप्तमी, सो यहाँ विषयसप्तमी है। निमित्त-सप्तमी क्ङिति च (१।१।५) में है। तथा परसप्तमी के अनेकों उदाहरण हैं, जहाँ पर 'परे रहते' ऐसा कहा जाये, वह पर-सप्तमी है। तथा विषयसप्तमी वह है, जहाँ वह प्रत्यय अभी आया न हो, केवल यह विवक्षा हो कि ऐसा विषय आगे आयेगा, सो ऐसा मानकर कार्य हो जाये। यथा—अस्तेर्भूः (२।४।५२) में आर्धधातुक का विषय आयेगा, ऐसी विवक्षा में आर्धधातुक प्रत्यय लाने से पूर्व ही भू आदेश कर देते हैं। विषय-सप्तमी का विशेष प्रयोजन अस्तेर्भूः (२।४।५२), ब्रुवो वचिः, चक्षिङः ख्याञ् (२।४।५३-५४) में ही है, न कि सब सूत्रों में। आर्धधातुकं शेषः (३।४।११४) से धातोः (३।१।९१) के अधिकार में धातु से आनेवाले शेष प्रत्ययों की आर्धधातुक संज्ञा कही है॥

अदो जग्धिर्ल्यप्ति किति॥२।४।३६॥

अदः ६।१॥ जग्धिः १।१॥ ल्यप् लुप्तसप्तम्यन्तनिर्देशः॥ ति ७।१॥ किति ७।१॥ स०—कितीत्यत्र बहुव्रीहिः॥ अनु०—आर्धधातुके॥ अर्थः—अदो जग्धिरादेशो भवति ल्यपि आर्धधातुके परतः, तकारादौ किति चार्धधातुके परतः॥ उदा०—प्रजग्ध्य। विजग्ध्य। जग्धः। जग्धवान्॥

भाषार्थः—[अदः] अद् को [जग्धिः] जग्धि आदेश होता है, [ल्यप्ति किति] ल्यप् तथा तकारादि कित् आर्धधातुक के परे रहते ॥ जग्धि में इकार उच्चारण के लिए लगाया है, वस्तुतः 'जग्ध्' आदेश होता है ॥

यहाँ से 'अदः' की अनुवृत्ति २।४।४० तक जायेगी ॥

लुङ्सनोर्घस्लृ ॥२।४।३७॥

लुङ्सनो: ७।२॥ घस्लृ १।१॥ स०—लुङ् च सन् च लुङ्सनौ, तयो:······, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—अदः, आर्धधातुके ॥ अर्थः—लुङि सनि चार्धधातुके परतः अद्धातोः 'घस्लृ' आदेशो भवति ॥ उदा०—अघसत् । सनि—जिघत्सति, जिघत्सतः ॥

भाषार्थः—[लुङ्सनोः] लुङ् और सन् आर्धधातुक के परे रहते अद् धातु को [घस्लृ] घस्लृ आदेश होता है ॥

यहाँ से 'घस्लृ' की अनुवृत्ति २।४।४० तक जायेगी ॥

घञपोश्च ॥२।४।३८॥

घञपोः ७।२॥ च अ० ॥ स०—घञ् च अप् च घञपौ, तयो:······,इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—अदः, घस्लृ, आर्धधातुके ॥ अर्थः—घञि अपि च आर्धधातुके परतः अदो 'घस्लृ' आदेशो भवति ॥ उदा०—घासः । प्रघसः ॥

भाषार्थः—[घञपोः] घञ् और अप् आर्धधातुक के परे रहते [च] भी अद् धातु को घस्लृ आदेश होता है ॥ उदा०—घासः (भोजन) । प्रघसः (भोजन) ॥

अद् धातु से भावे (३।३।१८) से घञ् होकर घस्लृ आदेश हुआ है । परि० १।१।१ भागः के समान सिद्धि समझें । प्रघसः में उपसर्गेऽदः (३।३।५९) से अप् प्रत्यय हुआ है । यहाँ वृद्धि ञित् णित् प्रत्यय परे न होने से नहीं हुई ॥

यहाँ से 'घञपोः' की अनुवृत्ति २।४।३९ तक जायेगी ॥

बहुलं छन्दसि ॥२।४।३९॥

बहुलम् १।१॥ छन्दसि ७।१॥ अनु०—घञपोः, अदः, घस्लृ, आर्धधातुके ॥ अर्थः—छन्दसि विषये घञि अपि चार्धधातुके परतो बहुलम् अदो 'घस्लृ' आदेशो भवति ॥ उदा०—अश्वायेव तिष्ठते घासमग्ने (अथ० १९।५५।६) । न च भवति—अष्टा महो दिव आदो हरी इव (ऋ० १।१२१।८) । अपि—प्रघसः । न च भवति—प्रादः । अन्यत्रापि बहुलग्रहणात्—घस्तां नूनम् (यजु० २१।४३) । सग्धिश्च मे (यजु० १८।९) ॥

भाषार्थः—[छन्दसि] छन्दविषय में घञ् अप् परे रहते अद् को घस्लृ आदेश [बहुलम्] बहुल करके होता है ॥ बहुल कहने से घञ् तथा अप् परे रहते घस् आदेश हो भी गया, और नहीं भी हुआ है। एवं जहाँ घञ् अप् परे नहीं भी था, वहाँ भी घस्लृ भाव हो जाता है ॥ यथा—'घस्ताम्' लङ् लकार में, तथा सग्धि क्तिन् परे रहते भी हो गया। सिद्धि परि० १।१।५७ में देखें ॥

लिट्यन्यतरस्याम् ॥२।४।४०॥

लिटि ७।१॥ अन्यतरस्याम् अ० ॥ अनु०—अदः, घस्लृ, आर्धधातुके ॥ अर्थः—लिटि परतोऽदो अन्यतरस्यां 'घस्लृ' आदेशो भवति ॥ उदा०—जघास, जक्षतुः, जक्षुः। पक्षे—आद, आदतुः, आदुः ॥

भाषार्थः—[लिटि] लिट् परे रहते अद् को [अन्यतरस्याम्] विकल्प से घस्लृ आदेश होता है ॥ परि० १।१।५७ में जक्षतुः जक्षुः की सिद्धि देखें। जघास में णल् के परे अत उपधायाः (७।२।११६) से वृद्धि हो गई, यही विशेष है। यहाँ असंयोगा० (१।२।५) से कित्वत् न होने से उपधालोप नहीं हुआ। जब घस्लृ आदेश नहीं हुआ, तब आद आदतुः बन गया है ॥

यहाँ से सारे सूत्र की अनुवृत्ति २।४।४१ तक जायेगी ॥

वेञो वयिः ॥२।४।४१॥

वेञः ६।१॥ वयिः १।१॥ अनु०—लिट्यन्यतरस्याम्, आर्धधातुके॥ अर्थः—वेञः स्थाने 'वयिः' आदेशो विकल्पेन भवति लिट्यार्धधातुके परत ॥ उदा०—उवाय, ऊयतुः, ऊयुः, ऊवतुः, ऊवुः। ववौ, ववतुः, ववुः ॥

भाषार्थः—[वेञः] वेञ् को [वयिः] वयि आदेश विकल्प से लिट् आर्धधातुक के परे रहते हो जाता है ॥

हनो वध लिङि ॥२।४।४२॥

हनः ६।१॥ वध लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ लिङि ७।१॥ अनु०—आर्धधातुके ॥ अर्थः—हनो वध आदेशो भवति लिङ्यार्धधातुके परतः ॥ उदा०—वध्यात्। वध्यास्ताम्। वध्यासुः ॥

भाषार्थः—[हनः] हन् को [वध] वध आदेश आर्धधातुक [लिङि] लिङ् के परे रहते हो जाता है ॥ लिङाशिषि (३।४।११६) से आशीर्लिङ् ही आर्धधातुक होता है, विधिलिङ् नहीं ॥

यहाँ से 'हनो वध' की अनुवृत्ति २।४।४४ तक जायेगी ॥

लुङि च ॥२।४।४३॥

लुङि ७।१॥ च अ० ॥ अनु०—हनो वध, आर्धधातुके ॥ अर्थः—लुङ्यार्धधातुके परतो हन्धातोः 'वध' आदेशो भवति ॥ उदा०—अवधीत । अवधिष्टाम् । अवधिषुः ॥

भाषार्थः—[लुङि] लुङ् आर्धधातुक के परे रहते [च] भी हन् को वध आदेश हो जाता है ॥ अवधीत् की सिद्धि परि० १।१।५६ में देखें । अवधिष्टाम् में भी पूर्ववत् तस् को ताम्, तथा आदेशप्रत्यययोः (८।३।५९) से स् को ष, ष्टुना ष्टुः (८।४।४०) से त् को ट् होकर अवधिष्टाम् बना । शेष पूर्ववत् ही है । अवधिषुः में झि को जुस् सिजभ्यस्त० (३।४।१०९) से होकर अवधिष् उस् = अवधिषुः पूर्ववत् सब कार्य होकर बन गया है ॥

आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम् ॥२।४।४४॥

आत्मनेपदेषु ७।३॥ अन्यतरस्याम् अ० ॥ अनु०—हनो वध, आर्धधातुके ॥ अर्थः—लुङ्लकारे आत्मनेपदेषु प्रत्ययेषु परतो हनो वध आदेशो विकल्पेन भवति ॥ उदा०—आवधिष्ट, आवधिषाताम्, आवधिषत । आहत आहसाताम्, आहसत ॥

भाषार्थः—लुङ् लकार में [आत्मनेपदेषु] आत्मनेपदसंज्ञक प्रत्ययों के परे रहते [अन्यतरस्याम्] विकल्प करके हन को वध आदेश होता है ॥ सूत्र १।२।१४ में आहत आदि की सिद्धि समझें । यहाँ आङो यमहनः (१।३।२८) से आत्मनेपद होता है ॥ आ अट् वध इट् स् त = आ वध इ स् त, इस अवस्था में पूर्ववत् षत्व तथा ष्टुत्व होकर आवधिष्ट बन गया ॥

इणो गा लुङि ॥२।४।४५॥

इणः ६।१॥ गा लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ लुङि ७।१॥ अनु०—आर्धधातुके ॥ अर्थः—इण्धातोः 'गा' आदेशो भवति लुङ्यार्धधातुके परतः ॥ उदा०—अगात् । अगाताम् । अगुः ॥

भाषार्थः—[इणः] इण् को [गा] गा आदेश [लुङि] लुङ् आर्धधातुक परे रहते हो जाता है ॥ अट् गा स् त् इस अवस्था में सिच् का लुक् गातिस्थाघु० (२।४।७७) से होकर अगात् बना । शेष सब पूर्ववत् है । अगुः में झि को जुस् आतः (३।४।११०) से हुआ है ॥

यहाँ से 'इणः' की अनुवृत्ति २।४।४७ तक जायेगी ॥

णौ गमिरबोधने ॥२।४।४६॥

णौ ७।१॥ गमिः १।१॥ अबोधने ७।१॥ स०—न बोधनम् अबोधनम्, तस्मिन् ···, नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—इणः, आर्धधातुके ॥ अर्थः—णौ आर्धधातुके परतः अबोधनार्थस्य =अज्ञानार्थस्य इणो गमिरादेशो भवति ॥ उदा०—गमयति । गमयतः । गमयन्ति ॥

भाषार्थः—[णौ] णिच् आर्धधातुक के परे रहते [अबोधने] अबोधनार्थक अर्थात् अज्ञानार्थक इण् धातु को [गमिः] गमि आदेश हो जाता है ॥ गमि में इकार उच्चारणार्थ है ॥

उदा०—गमयति (भेजता है)। गमयतः। गमयन्ति ॥ णिजन्त की सिद्धि हम बहुत बार कर आये हैं, सो उसी प्रकार समझें ॥

यहाँ से 'गमिः' की अनुवृत्ति २।४।४८ तक, तथा अबोधने की अनुवृत्ति २।४।४७ तक जायेगी ॥

सनि च ॥२।४।४७॥

सनि ७।१॥ च अ० ॥ अनु०—गमिरबोधने, इणः, आर्धधातुके ॥ अर्थः—अबोधनार्थस्य 'इणः' सनि आर्धधातुके परतो गमिरादेशो भवति ॥ उदा०—जिगमिषति । जिगमिषतः । जिगमिषन्ति ॥

भाषार्थः—[सनि] सन् आर्धधातुक प्रत्यय के परे रहते [च] भी अबोधनार्थक इण् धातु को गमि आदेश हो जाता है ॥

उदा०—जिगमिषति (जाना चाहता है)। जिगमिषतः। जिगमिषन्ति ॥ सन्नन्त की सिद्धियाँ भी हम पूर्व दिखा चुके हैं, उसी प्रकार समझें। अभ्यास के ग् को ज् कुहोश्चुः (७।४।६२) से होकर, सन्यतः (७।४।७९) से इत्व हो गया है ॥

यहाँ से 'सनि' की अनुवृत्ति २।४।४८ तक जायेगी ॥

इङश्च ॥२।४।४८॥

इङः ६।१॥ च अ० ॥ अनु०—सनि, गमिः, आर्धधातुके ॥ अर्थः—इङ्धातोः सन्यार्धधातुके परतो गमिरादेशो भवति ॥ उदा०—अधिजिगांसते । अधिजिगांसेते ॥

भाषार्थः—[इङः] इङ् धातु को [च] भी सन् प्रत्यय के परे गमि आदेश हो जाता है ॥ उदा०—अधिजिगांसते (पढ़ना चाहता है)। अधिजिगांसेते ॥

पूर्ववत् सनः (१।३।६२) से उदाहरण में आत्मनेपद होगा। अज्झनगमां० (६।४।१६) से ग के अ को दीर्घ, तथा म को अनुस्वार नश्चापदान्तस्य झलि

(८।३।२४) से हो गया है। शेष सिद्धि सन्नन्त के समान ही है ॥ इङ् धातु का अधि पूर्वक ही प्रयोग होता है, अतः वैसे ही उदाहरण दिये हैं ॥

यहाँ से 'इङः' की अनुवृत्ति २।४।५१ तक जायेगी ॥

गाङ् लिटि ॥२।४।४६॥

गाङ् १।१॥ लिटि ७।१॥ अनु०—इङः, आर्धधातुके ॥ अर्थः—इङः गाङ् आदेशो भवति लिटचार्धधातुके परतः ॥ उदा०—अधिजगे । अधिजगाते । अधिजगिरे ॥

भाषार्थः—इङ् को [गाङ्] गाङ् आदेश [लिटि] लिट् लकार परे रहते होता है ॥ उदा०—अधिजगे (उसने पढ़ा) । अधिजगाते । अधिजगिरे ॥

लिटस्तझयो० (३।४।८१) से त को एश्, तथा आतो लोप० (६।४।६४) से आकारलोप होकर—'अधि ग् ए' इस अवस्था में द्विर्वचनेऽचि (१।१।५६) से स्थानिवद्भाव होकर, लिटि धातोर० (६।१।८) से द्वित्व हुआ, और 'अधिगा ग् ए' ऐसा बनकर, पूर्ववत् अभ्यासकार्य होकर अधिजगे बन गया ॥

यहाँ से 'गाङ्' की अनुवृत्ति २।४।५१ तक जायेगी ॥

विभाषा लुङ्लृङोः ॥२।४।५०॥

विभाषा १।१॥ लुङ्लृङोः ७।२॥ स०—लुङ् च लृङ् च लुङ्लृङौ, तयोः……, इतरेतरयोगेद्वन्द्वः ॥ अनु०—इङः, गाङ्, आर्धधातुके ॥ अर्थः—इङ्धातोर्विभाषा गाङ् आदेशो भवति लुङि लृङि चार्धधातुके परतः ॥ उदा०—अध्यगीष्ट, अध्यगीषाताम् । पक्षे—अध्यैष्ट, अध्यैषाताम् । लृङ्—अध्यगीष्यत, अध्यगीष्येताम् । पक्षे—अध्यैष्यत, अध्यैष्येताम् ॥

भाषार्थः—इङ् धातु को [विभाषा] विकल्प से गाङ् आदेश [लुङ्लृङोः] लुङ् लृङ् लकार परे रहते हो जाता है ॥

यहाँ से 'विभाषा' की अनुवृत्ति २।४।५१ तक जायेगी ॥

णौ च संश्चङोः ॥२।४।५१॥

णौ ७।१॥ च अ० ॥ संश्चङोः ७।२॥ स०—सन् च चङ् च संश्चङौ, तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—विभाषा, गाङ्, इङः, आर्धधातुके ॥ अर्थः—सन्परे चङ्परे च णिचि परत इङ्धातोर्विकल्पेन गाङ् आदेशो भवति ॥ उदा०—अधिजिगापयिषति, अध्यापिपयिषति । चङि—अध्यजीगपत्, अध्यापिपत् ॥

भाषार्थः—[संश्चङोः] सन् परे है जिससे तथा चङ् परे है जिससे ऐसा जो [णौ]णिच्, उसके परे रहते [च] भी इङ् धातु को विकल्प से गाङ् आदेश होता है ।।

अस्तेर्भूः ।।२।४।५२।।

अस्तेः ६।१।। भूः १।१।। अनु०—आर्धधातुके ।। अर्थः—अस् धातोः स्थाने 'भू' इत्ययमादेशो भवति आर्धधातुके विषये ।। उदा०—भविता, भवितुम्, भवितव्यम् ।।

भाषार्थः—आर्धधातुक का विषय यदि उपस्थित हो, तो [अस्तेः] अस् धातु को [भूः] भू आदेश होता है ।। परि० १।१।४८ में सिद्धियाँ देखें ।।

ब्रुवो वचिः ।।२।४।५३।।

ब्रुवः ६।१।। वचिः १।१।। अनु०—आर्धधातुके ।। अर्थः—आर्धधातुके विषये ब्रूञ्धातोः वचिरादेशो भवति ।। उदा०—वक्ता, वक्तुम्, वक्तव्यम् ।।

भाषार्थः—आर्धधातुक विषय में [ब्रुवः] ब्रूञ् धातु को [वचिः] वचि आदेश होता है ।। परि० १।१।४८ में सिद्धि देखें । वचि में इकार उच्चारण के लिये है, वस्तुतः वच् आदेश होता है ।।

चक्षिङः ख्याञ् ।।२।४।५४।।

चक्षिङः ६।१।। ख्याञ् १।१।। अनु०—आर्धधातुके ।। अर्थः—चक्षिङ्धातोः ख्याञ् आदेशो भवति आर्धधातुके विषये ।। उदा०—आख्याता, आख्यातुम्, आख्यातव्यम् ।।

भाषार्थः—[चक्षिङः] चक्षिङ् धातु को [ख्याञ्] ख्याञ् आदेश आर्धधातुक विषय में होता है ।।

उदा०—आख्याता (कहनेवाला) । आख्यातुम् । आख्यातव्यम् ।। पूर्ववत् परि० १।१।४८ के समान ही सिद्धियां हैं । चक्षिङ् के ङित् होने से स्थानिवत् होकर नित्य आत्मनेपद प्राप्त होता था, उसे हटाने के लिए ख्याञ् में ञकार अनुबन्ध लगाया है ।।

यहाँ से 'चक्षिङः ख्याञ्' की अनुवृत्ति २।४।५५ तक जायेगी ।।

वा लिटि ।।२।४।५५।।

वा अ० ।। लिटि ७।१।। अनु०—चक्षिङः ख्याञ्, आर्धधातुके ।। अर्थः—लिट्यार्धधातुके परतः चक्षिङः ख्याञ आदेशो वा भवति ।। उदा०—आचख्यौ, आचख्यतुः, आचख्युः । आचचक्षे, आचचक्षाते, आचचक्षिरे ।।

भाषार्थः—[लिटि] लिट् आर्धधातुक के परे रहते चक्षिङ् धातु को [वा] विकल्प से ख्याञ् आदेश होता है ॥ उदा०—आचख्यौ (उसने कहा), आचख्यतुः, आचख्युः । आचचक्षे, आचचक्षाते, आचचक्षिरे ॥ आचख्यतुः आचख्युः की सिद्धि परि० १।१।५८ के पपतुः पपुः के समान जानें । केवल यहाँ ख्याञ् आदेश ही विशेष है। आचख्यौ में 'णल्' को आत औ णलः (७।१।३४) से औकारादेश होकर वृद्धि एकादेश हो गया है। आचचक्षे में चक्षिङ् को ख्याञ् आदेश नहीं हुआ है। सो पूर्ववत् द्वित्व अभ्यासकार्य, और 'त' को एश् (३।४।८१) होकर आ च चक्ष् ए=आचचक्षे बना। आचचक्षिरे में झ को इरेच् (३।४।८१) हो गया है ॥

यहाँ से 'वा' की अनुवृत्ति २।४।५६ तक जायेगी ॥

अजेर्व्यघञपोः ॥२।४।५६॥

अजेः ६।१॥ वी लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ अघञपोः ७।२॥ स०—घञ् च अप् च घञपौ, इतरेतरयोगद्वन्द्वः । न घञपौ अघञपौ, तयोः······,नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—वा, आर्धधातुके ॥ अर्थः—अजधातोः 'वी' आदेशो विकल्पेन भवति आर्धधातुके परतः, घञपौ वर्जयित्वा ॥ उदा०—प्रवेता, प्राजिता । प्रवेतुम्, प्राजितुम् । प्रवेतव्यम्, प्राजितव्यम् ॥

भाषार्थः—[अजेः] अज धातु को [वी] वी आदेश विकल्प से आर्धधातुक परे रहते होता है [अघञपोः] घञ् अप् आर्धधातुकों को छोड़कर ॥ उदा०—प्रवेता (ले जानेवाला), प्राजिता । प्रवेतुम्, प्राजितुम् । प्रवेतव्यम्, प्राजितव्यम् ॥ परि० १।१।४८ के समान ही सिद्धियाँ हैं । जब 'अज' आदेश नहीं हुआ, तो सेट् होने से इडागम, तथा जब 'वी' आदेश हुआ, तो एकाच उपदेशे० (७।२।१०) से इट् निषेध होकर, सार्वधातु० (७।३।८४) से गुण हो गया ॥

यहाँ से 'अजेः' की अनुवृत्ति २।४।५७ तक जायेगी ॥

वा यौ ॥२।४।५७॥

वाः १।१॥ यौ ७।१॥ अनु०—अजेः, आर्धधातुके ॥ अर्थः—अजेः 'वा' आदेशो भवति ,यौ=औणादिके युचि प्रत्यये परतः॥ उदा०—वायुः ॥

भाषार्थः—अज को [वा] वा आदेश होता है, औणादिक [यौ] युच् आर्धधातुक प्रत्यय के परे रहते ॥ यहाँ यु को युवोरनाकौ (७।१।१) से अन आदेश नहीं होता, क्योंकि

युवोरनाकौ से सानुनासिक यु वु को ही अन अक आदेश होते हैं, और यह निरनुनासिक यु है ॥ यजिमनिशुन्धिदसिजनिभ्यो युच् (उणा० ३।२०) इस उणादिसूत्र से युच् प्रत्यय होता है। सो बाहुलक से अज धातु से भी युच् प्रत्यय हो जाता है ॥

[लुक्-प्रकरणम्]

ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः ॥२।४।५८॥

ण्यक्षत्रियार्षञितः ५।१॥ यूनि ७।१॥ लुक् १।१॥ अणिञोः ६।२॥ स०—ञ् इत् यस्य स ञित्, ण्यश्च क्षत्रियश्च आर्षश्च ञिच्च ण्यक्षत्रियार्षञित्, तस्मात्……, बहुव्रीहिगर्भसमाहारो द्वन्द्वः। अण् च इञ् च अणिञौ, तयोः……,इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अर्थः—ण्यन्तात् गोत्रप्रत्ययान्तात् क्षत्रियवाचिगोत्रप्रत्ययान्तात्, ऋषिवाचिगोत्रप्रत्ययान्तात्, ञित्गोत्रप्रत्ययान्ताच्च युवापत्ये विहितयोः अणिञोर्लुग् भवति ॥ उदा०—कौरव्यः पिता, कौरव्यः पुत्रः। क्षत्रिय—श्वाफल्कः पिता, श्वाफल्कः पुत्रः। आर्ष—वासिष्ठः पिता, वासिष्ठः पुत्रः। ञित्—बैदः पिता, बैदः पुत्रः। अणः—तैकायनिः पिता, तैकायनिः पुत्रः ॥

भाषार्थः—[ण्यक्षत्रियार्षञितः] ण्यन्त गोत्रप्रत्ययान्त, क्षत्रियवाचि गोत्रप्रत्ययान्त, ऋषिवाची गोत्रप्रत्ययान्त, तथा ञ् जिनका इत्संज्ञक हो ऐसे जो गोत्रप्रत्ययान्त शब्द, उनसे जो [यूनि] युवापत्य में आये [अणिञोः] अण् और इञ् प्रत्यय, उनका [लुक्] लुक् हो जाता है ॥

ण्य, क्षत्रिय, आर्ष से युवापत्य में अण् का उदाहरण नहीं मिलता, अतः 'ञित् से उत्पन्न अण्' का ही उदाहरण दिया है ॥

यहाँ से 'यूनि' की अनुवृत्ति २।४।६१ तक, तथा 'लुक्' की अनुवृत्ति २।४।८३ तक जायेगी ॥

पैलादिभ्यश्च ॥२।४।५९॥

पैलादिभ्यः ५।३॥ च अ० ॥ स०—पैल आदिर्येषां ते पैलादयः, तेभ्यः……, बहुव्रीहिः ॥ अनु०—यूनि लुक् ॥ अर्थः—पैलादिभ्यो गोत्रवाचिभ्यः शब्देभ्यः युवापत्ये विहितस्य प्रत्ययस्य लुग् भवति ॥ उदा०—पैलः पिता, पैलः पुत्रः ॥

भाषार्थः—गोत्रवाची जो [पैलादिभ्यः] पैलादि शब्द उनसे [च] भी युवापत्य में विहित जो प्रत्यय उसका लुक् हो जाता है ॥

पीला शब्द से गोत्रापत्य में पीलाया वा (४।१।११८) से अण् प्रत्यय हुआ है। तदन्त से पुनः युवापत्य में जो अणो द्व्यचः (४।१।१५६) से फिञ् आया, उसका लुक्

प्रकृत सूत्र से हो गया, सो पिता पुत्र दोनों पैल कहलाये ।। पैलादि गण में जो इञन्त शब्द हैं, उनसे यञिञोश्च (४।१।१०१) से युवापत्य में प्राप्त फक् का, तथा जो फिञ्-प्रत्ययान्त शब्द हैं, उनसे युवापत्य में तस्यापत्यम् (४।१।९२) से प्राप्त अण् का लुक् हो गया है ।।

इञः प्राचाम् ॥२।४।६०॥

इञः ५।१।। प्राचाम् ६।३।। अनु०—यूनि लुक् ।। अर्थः—प्राचां गोत्रे विहितो य इञ् तदन्तात् युवप्रत्ययस्य लुग् भवति ।। उदा०—पान्नागारिः पिता, पान्नागारिः पुत्रः । मान्थरैषणिः पिता, मान्थरैषणिः पुत्रः ।।

भाषार्थः—[प्राचाम्] प्राग्देशवाले गोत्रापत्य में विहित जो [इञः] इञ् प्रत्यय, तदन्त से युवापत्य में विहित प्रत्ययों का लुक् होता है ।। गोत्र में अत इञ् (४।१।९५) से इञ् हुआ था । सो युवापत्य में जो यञिञोश्च (४।१।१०१) से फक् आया, उसका लुक् हो गया है ।।

न तौल्वलिभ्यः ॥२।४।६१॥

न अ० ।। तौल्वलिभ्यः ५।३।। अनु०—यूनि लुक् ।। अर्थः—पूर्वेण प्राप्तो लुक् प्रतिषिध्यते । गोत्रवाचिभ्यः तौल्वल्यादिभ्यो युवापत्ये विहितस्य प्रत्ययस्य लुङ् न भवति ।। उदा०—तौल्वलिः पिता, तौल्वलायनः पुत्रः ।।

भाषार्थः—गोत्रवाची [तौल्वलिभ्यः] तौल्वलि आदि शब्दों से विहित जो युवापत्य में प्रत्यय, उसका लुक् [न] नहीं होता है ।।

सब गणपठित शब्दों में गोत्रापत्य में इञ् आता है । सो उससे आये जो युवापत्य में यञिञोश्च (४।१।१०१) से फक् आयेगा, उसका लुक् नहीं हुआ । तो तौल्वलायनः पुत्रः आदि प्रयोग बने । इस प्रकार पूर्व सूत्र से जो लुक् की प्राप्ति थी, उसका यह निषेधसूत्र है ।। तौल्वलिभ्यः में बहुवचन ग्रहण करने से तौल्वल्यादि गण लिया गया है ।।

तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम् ॥२।४।६२॥

तद्राजस्य ६।१।। बहुषु ७।३।। तेन ३।१।। एव अ० ।। अस्त्रियाम् ७।१।। स०—न स्त्री अस्त्री, तस्याम् ·····, नञ्तत्पुरुषः ।। अनु०—लुक ।। अर्थः—अस्त्रीलिङ्गस्य बहुषु वर्त्तमानस्य तद्राजसंज्ञकस्य प्रत्ययस्य लुग्भवति, यदि तेनैव=तद्राजसंज्ञकेनैव कृतं बहुत्वं स्यात् ।। उदा०—अङ्गाः, वङ्गाः, मगधाः, कलिङ्गाः ।।

भाषार्थः—[बहुषु] बहुत्व अर्थ में वर्त्तमान [तद्राजस्य] तद्राजसञ्ज्ञक

प्रत्यय का लुक् हो जाता है [अस्त्रियाम्] स्त्रीलिङ्ग को छोड़कर, यदि वह बहुत्व [तेनैव] उसी तद्राजसञ्ज्ञक कृत हो ॥ ते तद्राजाः (४।१।१७२), तथा ञ्यादयस्तद्राजाः (५।३।११६) से तद्राज संज्ञा कही है ॥

यहाँ से 'बहुषु तेनैव' की अनुवृत्ति २।४।७० तक जायेगी, तथा 'अस्त्रियाम्' की अनुवृत्ति २।४।६५ तक जायेगी ॥

यस्कादिभ्यो गोत्रे ॥२।४।६३॥

यस्कादिभ्यः ५।३॥ गोत्रे ७।१॥ स०—यस्क आदिर्येषां ते यस्कादयः, तेभ्यः, बहुव्रीहिः ॥ अनु०—लुक्, बहुषु तेनैवास्त्रियाम् ॥ अर्थः—यस्कादिभ्यो विहितो यो गोत्रप्रत्ययः तस्य बहुषु वर्त्तमानस्य अस्त्रीलिङ्गस्य लुग् भवति, यदि तेनैव=गोत्रप्रत्ययेनैव कृतं बहुत्वं स्यात् ॥ उदा०—यस्काः । लभ्याः ॥

भाषार्थः—[यस्कादिभ्यः] यस्कादिगण-पठित शब्दों से विहित बहुत्व अर्थ में जो [गोत्रे] गोत्रप्रत्यय उसका लुक् हो जाये, स्त्रीलिङ्ग को छोड़कर, यदि वह बहुत्व उस गोत्रप्रत्यय कृत हो ॥ यस्काः आदि में गोत्रापत्य में यस्कस्य गोत्रापत्यानि बहूनि इस अर्थ में शिवादिभ्योऽण् (४।१।११२) से जो अण् आया, उसका प्रकृत सूत्र से तत्कृत बहुत्व होने से लुक् हो गया है । सो यास्कः, यास्कौ, यस्काः ऐसे रूप चलेंगे ॥

यहाँ से 'गोत्रे' की अनुवृत्ति २।४।७० तक जायेगी ॥

यञञोश्च ॥२।४।६४॥

यञञोः ६।२॥ च अ० ॥ स०—यञ् च अञ् च यञञौ, तयोः........., इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—गोत्रे, लुक्, बहुषु तेनैवास्त्रियाम् ॥ अर्थः—गोत्रे विहितस्य यञ्प्रत्ययस्य अञ्प्रत्ययस्य च लुग् भवति, तत्कृतं=गोत्रप्रत्ययकृतं यदि बहुत्वं स्यात्, स्त्रीलिङ्गं विहाय ॥ उदा०—गर्गाः, वत्साः । अञ्—बिदाः, उर्वाः ॥

भाषार्थः—गोत्र में विहित जो [यञञोः] यञ् और अञ् प्रत्यय उनका [च] भी तत्कृत बहुत्व में लुक् होता है, स्त्रीलिङ्ग को छोड़कर ॥ गर्गाः की सिद्धि परि० १।१।६२ में देखें । बिदाः उर्वाः में अनृष्यानन्तर्ये० (४।१।१०४) से बहुत अपत्यों को कहने में जो अञ् प्रत्यय आया था, उसका लुक् प्रकृत सूत्र से होकर तन्निमित्तक वृद्धि आदि भी हटकर बैदः, बैदौ, बिदाः ऐसे रूप चलेंगे ॥

अत्रिभृगुकुत्सवसिष्ठगोतमाङ्गिरोभ्यश्च ॥२।४।६५॥

अत्रिभृगु.........रोभ्यः ५।३॥ च अ० ॥ स०—अत्रिश्च भृगुश्च कुत्सश्च वसिष्ठश्च गोतमश्च अङ्गिराश्चेति अत्रिभृगुकुत्सवसिष्ठगोतमाङ्गिरसः, तेभ्यः.........,

इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—गोत्रे, लुक्, बहुषु तेनैवास्त्रियाम् ॥ अर्थः—अत्रि, भृगु, कुत्स, वसिष्ठ, गोतम, अङ्गिरस् इत्येतेभ्यः शब्देभ्यो गोत्रे विहितस्य प्रत्ययस्य तत्कृतबहुवचने लुग् भवति, स्त्रीलिङ्गं विहाय ॥ उदा०—अत्रयः, भृगवः, कुत्साः, वसिष्ठाः, गोतमाः, अङ्गिरसः ॥

भाषार्थः—[अत्रि......भ्यः] अत्रि, भृगु, कुत्स, वसिष्ठ, गोतम, अङ्गिरस् इन शब्दों से तत्कृतबहुत्व गोत्रापत्य में विहित जो प्रत्यय उसका, [च] भी लुक् हो जाता है ॥ अत्रि शब्द से इतश्चानिञः (४।१।१२२) से बहुत्व में जो ढक् प्रत्यय हुआ उसका लुक् होकर अत्रयः (अत्रि के पौत्रादि) बना। एकवचन द्विवचन में ढक् का लुक् न होने से 'आत्रेयः, आत्रेयौ' बनेगा। शेष भृगु आदियों से ऋष्यन्धक० (४।१।११४) से अण् प्रत्यय बहुत्व अर्थ में हुआ है, सो उसका लुक् हो गया। भृगु को जसि च (७।३।१०९) से गुण होकर भृगवः बना है ॥

बह्वच इञः प्राच्यभरतेषु ॥२।४।६६॥

बह्वचः ५।१॥ इञः ६।१॥ प्राच्यभरतेषु ७।३॥ स०—बहवोऽचो यस्मिन् स बह्वच्, तस्मात्, बहुव्रीहि ॥ प्राक्षु भवाः प्राच्याः, प्राच्याश्च भरताश्च प्राच्यभरताः, तेषु... ,इतरेतरयोगद्वन्द्वः । अनु०—गोत्रे, लुक्, बहुषु तेनैव ॥ अर्थः—बह्वच्-शब्दात् प्राच्यगोत्रे भरतगोत्रे च य इञ् विहितः तस्य गोत्रप्रत्ययकृतबहुवचने लुग् भवति ॥ उदा०—पन्नागाराः, मन्थरैषणाः । भरतगोत्रे—युधिष्ठिराः, अर्जुनाः ॥

भाषार्थः—[बह्वचः] बह्वच् शब्द से [प्राच्यभरतेषु] प्राच्यगोत्र तथा भरतगोत्र में विहित जो [इञः] इञ् प्रत्यय उसका, तत्कृतबहुवचन में लुक् हो जाता है ॥

उदा०—पन्नागाराः, मन्थरैषणाः (मन्थरैषण नामक व्यक्ति के बहुत से पौत्र प्रपौत्र आदि)। भरतगोत्र में—युधिष्ठिराः, अर्जुनाः ॥

पन्नागार युधिष्ठिर आदि बह्वच् शब्द हैं। सो उनके बहुत से पौत्र आदिकों को कहने में गोत्रप्रत्यय जो अत इञ् (४।१।९५) से इञ् आया था, उसका लुक् हो गया है ॥ एकत्व द्वित्व अर्थ में लुक् न होने से 'पान्नागारिः, पान्नागारी' बनता है ॥

न गोपवनादिभ्यः ॥२।४।६७॥

न अ० ॥ गोपवनादिभ्यः ५।३॥ स०—गोपवन आदिर्येषां ते गोपवनादयः, तेभ्यः......,बहुव्रीहिः ॥ अनु०—गोत्रे, लुक्, बहुषु तेनैव ॥ अर्थः—गोपवनादिभ्यः परस्य गोत्रे विहितस्य प्रत्ययस्य तत्कृतबहुवचने लुङ् न भवति ॥ विदाद्यन्तर्गणोऽयं गोपवनादिः, तत्र अनृष्या० (४।१।१०४) इत्यनेन विहितस्य 'अञ्' प्रत्ययस्य यञञोश्च (२।४।६४) इति लक् प्राप्तः प्रतिषिध्यते ॥ उदा०—गौपवनाः, शैग्रवाः ॥

भाषार्थः—[गोपवनादिभ्यः] गोपवनादि शब्दों से परे गोत्रप्रत्यय का तत्कृत बहुवचन में लुक् [न] नहीं होता है ॥ गोपवनादिगण बिदादिगण के अन्तर्गत ही है। सो अनृष्यानन्तर्ये०(४।१।१०४)से हुये गोत्रप्रत्यय अञ् का बहुत्व में यञञोश्च(२।४।६४) से लुक् प्राप्त था। उसका इस सूत्र ने प्रतिषेध कर दिया, तो गौपवनाः ही बना ॥

तिककितवादिभ्यो द्वन्द्वे ॥२।४।६८॥

तिककितवादिभ्यः ५।३॥ द्वन्द्वे ७।१॥ स०—तिकश्च कितवश्च तिककितवौ, आदिश्च आदिश्च आदी, तौ आदी येषां ते तिककितवादयः, तेभ्यः……,द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः ॥ अनु०—गोत्रे, लुक्, बहुषु तेनैव ॥ अर्थः – द्वन्द्वसमासे तिकादिभ्यः कितवादिभ्यश्च परस्य गोत्रे विहितस्य प्रत्ययस्य तत्कृतबहुवचने लुग् भवति। उदा०- तैकायनयश्च कैतवायनयश्च तिककितवाः। वाङ्करयश्च भाण्डीरथयश्च वङ्करभण्डीरथाः ॥

भाषार्थः—[तिककितवादिभ्यः] तिकादि एवं कितवादिगण-पठित शब्दों से [द्वन्द्वे] द्वन्द्व समास में तत्कृतबहुत्व में आये हुए गोत्रप्रत्यय का लुक् होता है ॥ उदाहरण "तिककितवाः" में तिक कितव इन दोनों शब्दों से तिकादिभ्यः फिञ् (४।१।१५४) से फिञ् प्रत्यय होकर उसका लुक् हुआ है। 'वङ्करभण्डीरथाः' में दोनों शब्दों में अत इञ् (४।१।९५) से इञ् प्रत्यय होकर लुक् हुआ है ॥ चार्थे द्वन्द्वः (२।२।२९) से द्वन्द्व समास सर्वत्र हो ही जायेगा ॥

उपकादिभ्योऽन्यतरस्यामद्वन्द्वे ॥२।४।६९॥

उपकादिभ्यः ५।३॥ अन्यतरस्याम् अ० ॥ अद्वन्द्वे ७।१॥स०—उपक आदिर्येषां ते उपकादयः, तेभ्यः ..,बहुव्रीहिः। न द्वन्द्वः अद्वन्द्वः, तस्मिन् ,नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—गोत्रे, लुक्, बहुषु तेनैव ॥ अर्थः—उपकादिभ्यः शब्देभ्यो गोत्रे विहितस्य प्रत्ययस्य तत्कृतबहुवचने विकल्पेन लुग् भवति, द्वन्द्वे चाद्वन्द्वे च ॥ उदा०—उपकलमकाः, भ्रष्टककपिष्ठलाः, कृष्णाजिनकृष्णसुन्दराः। एते त्रयः शब्दाः कृतद्वन्द्वास्तिककितवादिषु पठिताः, एतेषु पूर्वेण नित्यं लुक् भवति, अद्वन्द्वे त्वनेन विकल्पो भवति। उपकाः औपकायनाः, लमकाः लामकायनाः इत्यादयः। परिशिष्टानां तु द्वन्द्वेऽद्वन्द्वे सर्वत्र विकल्पो भवति ॥

भाषार्थः—[उपकादिभ्यः] उपकादि शब्दों से परे गोत्र में विहित जो तत्कृत-बहुवचन में प्रत्यय उसका लुक् [अन्यतरस्याम्] विकल्प से होता है [अद्वन्द्वे] द्वन्द्व समास में भी और अद्वन्द्व समास में भी ॥

यहाँ 'अद्वन्द्वे' ग्रहण ऊपर से आनेवाले 'द्वन्द्वे' के अधिकार की समाप्ति के लिये है,

न कि "द्वन्द्व समास में न हो" इसलिए है। अतः यहाँ द्वन्द्व और अद्वन्द्व दोनों में ही विकल्प होता है ॥

उपकलमकाः, भ्रष्टककपिष्ठलाः, कृष्णाजिनकृष्णसुन्दराः ये तीन शब्द द्वन्द्व समास किये हुए तिककितवादि गण में पढ़े हैं। इनमें पूर्व सूत्र से ही नित्य लुक् होता है, यहाँ अद्वन्द्व में विकल्प के लिए पाठ है। यथा उपकाः, औपकायनाः; लमकाः, लामकायनाः आदि। शेष गणपठित शब्दों में द्वन्द्व एवं अद्वन्द्व दोनों में विकल्प होता है ॥ उपक तथा लमक शब्दों से नडादिभ्यः फक् (४।१।९९) से गोत्रप्रत्यय फक् हुआ था, उसी का इस सूत्र से लुक् हुआ है ॥ अद्वन्द्व में विकल्प होने से पक्ष में श्रवण भी हो गया है। भ्रष्टक एवं कपिष्ठल शब्दों से अत इञ् (४।१।९५) से गोत्र प्रत्यय इञ् हुआ है, उसी का इस सूत्र ने लुक् कर दिया है। एवं कृष्णाजिन तथा कृष्णसुन्दर से पूर्ववत् इञ् प्रत्यय हुआ था, उसी का यहाँ लुक् हो गया है ॥

आगस्त्यकौण्डिन्ययोरगस्तिकुण्डिनच् ॥२।४।७०॥

आगस्त्यकौण्डिन्ययोः ६।२॥ अगस्तिकुण्डिनच् १।१॥ स०—आगस्त्यश्च कौण्डिन्यश्च आगस्त्यकौण्डिन्यौ, तयोः ......,इतरेतरयोगद्वन्द्वः। अगस्तिश्च कुण्डिनच्च अगस्तिकुण्डिनच्, समाहारो द्वन्द्वः। अनु०—गोत्रे, लुक्, बहुषु तेनैव ॥ अर्थः—आगस्त्य कौण्डिन्य इत्येतयोः शब्दयोः गोत्रे विहितस्य प्रत्ययस्य तत्कृतबहुवचने लुग् भवति, परिशिष्टस्य च प्रकृतिभागस्य अगस्ति कुण्डिनच् इत्येतौ आदेशौ भवतः ॥ उदा०—अगस्तयः, कुण्डिनाः ॥

भाषार्थः—[आगस्त्यकौण्डिन्ययोः] आगस्त्य तथा कौण्डिन्य शब्दों से गोत्र में विहित जो तत्कृतबहुवचन में प्रत्यय, उसका लुक् हो जाता है, शेष बची अगस्त्य एवं कुण्डिनी प्रकृति को क्रमशः [अगस्तिकुण्डिनच्] अगस्ति और कुण्डिनच् आदेश भी हो जाते हैं ॥ आगस्त्य कौण्डिन्य शब्द गोत्रप्रत्यय उत्पन्न करके यहाँ निर्दिष्ट हैं ॥

सुपो धातुप्रातिपदिकयोः ॥२।४।७१॥

सुपः ६।१॥ धातुप्रातिपदिकयोः ६।२॥ स०—धातुश्च प्रातिपदिकञ्च धातुप्रातिपदिके, तयोः.........,इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—लुक् ॥ अर्थः—धात्ववयवस्य प्रातिपदिकावयवस्य च सुपो लुग् भवति ॥ उदा०—पुत्रीयति, घटीयति। प्रातिपदिकस्य—कष्टश्रितः, राजपुत्रः ॥

भाषार्थः—[धातुप्रातिपदिकयोः] धातु और प्रातिपदिक के अवयव [सुपः] सुप् का लुक् हो जाता है ॥

अदिप्रभृतिभ्यः शपः ॥२।४।७२॥

अदिः प्रभृतिभ्य ५।३॥ शपः ६।१॥ स०—अदिप्रभृति येषां ते अदिप्रभृतयः, तेभ्यः ………,बहुव्रीहिः ॥ **अनु०**—लुक ॥ **अर्थः**—अदादिगणपठितेभ्यो धातुभ्य उत्तरस्य शपो लुग् भवति ॥ **उदा०**—अत्ति । हन्ति । द्वेष्टि ॥

भाषार्थः—[अदिप्रभृतिभ्यः] **अदादि धातुओं से परे जो [शपः] शप् आता है, उसका लुक् हो जाता है ॥ 'अद् शप्, ति, हन् शप् ति' यहाँ शप् का लुक् होकर अद् ति रहा, खरि च (८।४।५४) से द् को त् होकर—अत्ति (खाता है), हन्ति (मारता है) बना । 'द्विष् शप् ति' में शप् का लुक् होकर गुण, तथा ष्टुना ष्टुः (८।४।४०) से ष्टुत्व होकर द्वेष्टि (द्वेष करता है) बना है ॥**

यहाँ से 'अदिप्रभृतिभ्य' की अनुवृत्ति २।४।७३ तक, तथा 'शपः' की अनुवृत्ति २।४।७६ तक जाती है ॥

बहुलं छन्दसि ॥२।४।७३॥

बहुलम् १।१॥ छन्दसि ७।१॥ **अनु०**—लुक्, अदिप्रभृतिभ्यः शपः ॥ **अर्थः**—छन्दसि=वैदिकप्रयोगविषये शपो बहुलं लुग् भवति ॥ **उदा०**—वृत्रं हनति (ऋ० ८।८९।३) । अशयदिन्द्रशत्रुः (ऋ० १।३२।१०) । बहुलग्रहणसामर्थ्याद् अन्यगणस्थेभ्योऽपि लुग् भवति—त्राध्वं नो देवाः (ऋ० २।२९।६) ॥

भाषार्थः—[छन्दसि] **वैदिक प्रयोग विषय में शप् का लुक् [बहुलम्] बहुल करके होता है ॥ जहाँ प्राप्त है वहाँ नहीं होता, जहाँ नहीं प्राप्त है वहाँ हो जाता है ॥ हन् शीङ् अदादिगण की धातु हैं, सो लुक् प्राप्त था, नहीं हुआ । अशयत् शीङ् धातु का लङ् लकार का रूप है । शीङ् को गुण तथा शप् परे मानकर अयादेश हो गया है ॥ त्रैङ् पालने भ्वादिगण की धातु है, सो लुक् प्राप्त नहीं था, हो गया है । लोट् में ध्वम् आदेश होकर त्राध्वं रूप बना है ॥**

यहाँ से 'बहुलम्' की अनुवृत्ति २।४।७४ तक जाती है ॥

यङोऽचि च ॥२।४।७४॥

यङः ६।१॥ अचि ७।१॥ च अ० ॥ **अनु०**—बहुलम्, लुक् ॥ **अर्थः**—अचि प्रत्यये परतो यङो बहुलं लुग् भवति, बहुलग्रहणाद् अनच्यपि भवति ॥ **उदा०**—लोलुवः । पोपुवः । मरीमृजः । सरीसृपः । अनच्यपि—पापठीति, लालपीति ॥

भाषार्थः—[अचि] **अच् प्रत्यय के परे रहते [यङः] यङ् का लुक् हो जाता है, [च] चकार से बहुल करके अच् परे न हो तो भी लुक् हो जाता है ॥ ऊपर से छन्दसि की अनुवृत्ति नहीं आती, अतः भाषा और छन्द दोनों में प्रयोग बनेंगे ॥**

जुहोत्यादिभ्यः श्लुः ॥२।४।७५॥

जुहोत्यादिभ्यः ५।३॥ श्लुः १।१॥ स०—जुहोति आदिर्येषां ते जुहोत्यादयः, तेभ्यः, बहुव्रीहिः ॥ अनु०—शपः ॥ अर्थः–जुहोत्यादिभ्यो धातुभ्य उत्तरस्या शपः श्लुर्भवति ॥ उदा०—जुहोति । बिभर्त्ति । नेनेक्ति ॥

भाषार्थः—[जुहोत्यादिभ्यः] जुहोत्यादिगण की धातुओं से उत्तर जो शप् उसका [श्लुः] श्लु हो जाता है, अर्थात् श्लु कहकर अदर्शन होता है ॥

यहाँ से 'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः' की अनुवृत्ति २।४।७६ तक जायेगी ॥

बहुलं छन्दसि ॥२।४।७६॥

बहुलम् १।१॥ छन्दसि ७।१॥ अनु०—शपः, जुहोत्यादिभ्यः श्लुः ॥ अर्थः—छन्दसि=वैदिकप्रयोगविषये जुहोत्यादिभ्यः परस्य बहुलं शपः श्लुरादेशो भवति ॥ उदा०—दाति प्रियाणि (ऋ० ४।८।३), धाति प्रियाणि । पूर्णां विवष्टि (ऋ० ७।१६।११), जनिमा विवक्ति ॥

भाषार्थः—[छन्दसि] छन्दविषय में जुहोत्यादि धातुओं से परे शप् को श्लु आदेश [बहुलम्] बहुल करके होता है ॥

गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु ॥२।४।७७॥

गातिस्थाघुपाभूभ्यः ५।३॥ सिचः ६।१॥ परस्मैपदेषु ७।३॥ ॥ स०—गातिश्च स्थाश्च घुश्च पाश्च भूश्च गातिस्थाघुपाभुवः, तेभ्यः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०–लुक् ॥ अर्थः–गा स्था घु पा भू इत्येतेभ्यो धातुभ्यः परस्य सिचो लुग् भवति परस्मैपदेषु परतः ॥ उदा०—अगात् । अस्थात् । घु—अदात्, अधात् । अपात् । अभूत् ॥

भाषार्थः—[गातिस्थाघुपाभूभ्यः] गा, स्था, घुसंज्ञक धातु, पा और भू इन धातुओं से परे [सिचः] सिच् का लुक् हो जाता है [परस्मैपदेषु] परस्मैपद परे रहते ॥

उदा०—अगात् (वह गया)। अस्थात् (वह ठहरा) । घु—अदात् (उसने दिया), अधात् (उसने धारण किया)। अपात् (उसने पिया)। अभूत् (वह हुआ)॥ यहाँ 'गाति' से इणो गा लुङि (२।४।४५) से विहित 'गा' आदेश का, तथा 'पा' से पीने अर्थवाली 'पा' धातु का ग्रहण है ॥ दाधा घ्वदाप् (१।१।१९) से घु संज्ञा होती है ॥ लुङ्

लकार में हम पहले सिद्धियाँ दिखा चुके हैं, उसी प्रकार यहाँ भी समझें। कुछ भी विशेष नहीं है ॥

यहाँ से 'सिचः' की अनुवृत्ति २।४।७९ तक, तथा 'परस्मैपदेषु' की अनुवृत्ति २।४।७८ तक जायेगी ॥

विभाषा घ्राधेट्शाच्छासः ॥२।४।७८॥

विभाषा १।१॥ घ्राधेटशाच्छासः ५।१॥ स०—घ्राश्च धेट च शाश्च छाश्च साश्चेति घ्राधेट्शाच्छासाः, तस्मात्···,समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—सिचः, परस्मैपदेषु, लुक् ॥ अर्थः—घ्रा धेट् शा छा सा इत्येतेभ्यो धातुभ्य उत्तरस्य सिचः परस्मैपदेषु परतो विकल्पेन लुग् भवति ॥ उदा०—अघ्रात्, अघ्रासीत् । अधात्, अधासीत् । अशात्, अशासीत् । अच्छात्, अच्छासीत् । असात्, असासीत् ॥

भाषार्थः—[घ्राधेट्शाच्छासः] घ्रा, धेट, शा, छा, सा इन धातुओं से परे [विभाषा] विकल्प करके परस्मैपद परे रहते सिच् का लुक् हो जाता है ॥ धेट् धातु घुसंज्ञक है, सो पूर्व सूत्र से नित्य सिच् का लुक् प्राप्त था, विकल्प विधान कर दिया है। शेष धातुओं से लुक् अप्राप्त था, सो विकल्प कह दिया है ॥

उदा०—अघ्रात्, अघ्रासीत् । अधात्, अधासीत् । अशात्, अशासीत् (उसने पतला किया) । अच्छात्, अच्छासीत् । असात्, असासीत् (उसने समाप्त कर लिया) । सिच् के अलुक् पक्ष में 'अ घ्रा सिच् ईट् त्' परि० १।१।१ अलावीत् के समान बनकर, यमरमनमातां सक् च (७।२।७३) से सक् और इट् आगम होकर 'अ घ्रा सक् इट् सिच् ईट् त्' बना। इट ईटि (८।२।२८) से सिच् के 'स' का लोप, तथा अनुबन्ध लोप होकर 'अ घ्रास् इ ई त्', सवर्ण दीर्घ होकर अघ्रासीत् बन गया है। इसी प्रकार अन्य सिद्धियों में भी समझें। अच्छात् में छे च (६।१।७१) से तुक् आगम, तथा श्चुत्व विशेष है ॥

यहाँ से 'विभाषा' की अनुवृत्ति २।४।७९ तक जायेगी ॥

तनादिभ्यस्तथासोः ॥२।४।७९॥

तनादिभ्यः ५।३॥ तथासोः ७।२॥ स०—तन आदिर्येषां ते तनादयः, तेभ्यः, बहुव्रीहिः । तश्च थाश्च तथासौ, तयोस्तथासोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—विभाषा, सिचः, लुक् ॥ अर्थः—तनादिभ्यो धातुभ्य उत्तरस्य सिचो विभाषा लुग् भवति तथासोः परतः ॥ उदा०—अतत, अतनिष्ट । असात, असनिष्ट । थास्—अतथाः, अतनिष्ठाः । असाथाः, असनिष्ठाः ॥

भाषार्थः—[तनादिभ्यः] तनादिगण की धातुओं से उत्तर जो सिच्, उसका [तथासोः] त और थास् परे रहते विकल्प से लुक् होता है ॥

उदा०—अतत (उसने विस्तार किया), अतनिष्ट । अतथाः (तुमने विस्तार किया), अतनिष्ठाः । असात (उसने दिया), असनिष्ट । असाथाः, असनिष्ठाः (तुमने दान दिया) ॥ सिच् के लुक् पक्ष में अनुदात्तो० (६।४।३७) से 'तन्' के न् का लोप हो गया, तथा जनसनखनां० (६।४।४२) से 'सन्' के न को आकार हो गया । अलुक् पक्ष में इट् आगम होकर अतनिष् त, अतनिष् थास्, इस अवस्था में ष्टुत्व होकर अतनिष्ट, अतनिष्ठास् बना । पूर्ववत् रुत्व विसर्जनीय होकर अतनिष्ठाः हो गया ॥

मन्त्रे घसह्वरणशवृदहाद्वृच्कृगमिजनिभ्यो लेः ॥२।४।८०॥

मन्त्रे ७।१॥ घस ······ जनिभ्यः ५।३॥ लेः ६।१॥ स०—घसश्च ह्वरश्च णशश्च वृ च दहश्च आच्च वृज् च कृ च गमिश्च जनिश्च घसह्वर···जनयः, तेभ्यः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—लुक् ॥ अर्थः—मन्त्रविषये घस, ह्वर, णश, वृ, दह, आत्, वृज्, कृ, गमि, जनि इत्येतेभ्यो धातुभ्य उत्तरस्य लेः=च्लिप्रत्ययस्य लुग् भवति ॥ उदा०—अक्षन्नमीमदन्त (ऋ० १।८२।१) । ह्वर्—माह्वर्मित्रस्य त्वम् । नश्—प्रणङ् मर्त्यस्य (ऋ० १।१८।३) । वृङ्वृञोः सामान्येन ग्रहणम्—सुरुचो वेन आवः (यजु० १३।३)। दह—मा न आ धक् (ऋ० ६।६१।१४)। आत् इत्यनेन आकारान्तस्य ग्रहणम्—आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम् (ऋ० १।११५।१) । वृज्—मा नो अस्मिन् महाधने परा वर्क् (ऋ० ८।७५।१२) । कृ—अक्रन् कर्म कर्मकृतः (यजु० ३।४७) । गमि—अग्मन् (ऋ० १।१२१।७) । जनि—अज्ञत वा अस्य दन्ताः (ऐ० ब्रा० ७।१४।१५) ॥

भाषार्थः—[मन्त्रे] मन्त्रविषय में [घस······जनिभ्यः] घस, ह्वृ, णश, वृ, दह, आत् =आकारान्त, वृज्, कृ, गमि, जनि इन धातुओं से उत्तर जो [लेः] लि अर्थात् च्लि प्रत्यय उसका लुक् हो जाता है ॥

यहाँ से 'लेः' की अनुवृत्ति २।४।८१ तक जायेगी ॥

आमः ॥२।४।८१॥

आमः ५।१॥ अनु०—लेः, लुक् ॥ अर्थः—आम उत्तरस्य लेर्लुग् भवति ॥ उदा०—ईहांचक्रे, ऊहांचक्रे, ईक्षांचक्रे ॥

भाषार्थः—[आमः] आम् प्रत्यय से उत्तर लि का लुक् हो जाता है ॥ सिद्धियां परि० १।३।६३ में देखें ॥ यहाँ सामर्थ्य से लेः से लिट् का ग्रहण होता है, न कि च्लि का ॥

अव्ययादाप्सुपः ॥२।४।८२॥

अव्ययात् ५।१॥ आप्सुपः ६।१॥ स०—आप् च सुप् च आप्सुप्, तस्य, समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—लुक् ॥ अर्थः—अव्ययाद् उत्तरस्य आपः सुपश्च लुग् भवति ॥ उदा०—तत्र शालायाम् । यत्र शालायाम् । सुप्—कृत्वा, हृत्वा ॥

भाषार्थः—[अव्ययात्] अव्यय से उत्तर [आप्सुपः] आप्=टाप्, डाप्, चाप् स्त्रीप्रत्यय, तथा सुप् का लुक् हो जाता है ॥

उदा०—तत्र शालायाम् (उस शाला में) । यत्र शालायाम् । सुपः—कृत्वा, हृत्वा ॥

तत्र यत्र की सिद्धि परि० १।१।३७ में देखें । यहाँ विशेष यह है कि स्त्रीलिङ्ग में जब अजाद्यतष्टाप् (४।१।४) से टाप् आया, तो अव्यय संज्ञा होने से उसका लुक् प्रकृत सूत्र से हो गया है ॥ परि० १।१।३९ में कृत्वा हृत्वा की सिद्धि देखें । अव्यय संज्ञा होकर कृत्वा हृत्वा के आगे जो सु आया था, उसका लुक् हो गया है ॥

यहाँ से 'सुपः' की अनुवृत्ति २।४।८३ तक जायेगी ॥

नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः ॥२।४।८३॥

न अ० ॥ अव्ययीभावात् ५।१॥ अतः ५।१॥ अम् १।१॥ तु अ० ॥ अपञ्चम्याः ६।१॥ स०—न पञ्चमी अपञ्चमी, तस्याः······, नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—सुपः, लुक् ॥ अर्थः—अतः=अदन्तात् अव्ययीभावसमासाद् उत्तरस्य सुपो लुङ् न भवति, तस्य सुपः 'अम्' आदेशस्तु भवति, अपञ्चम्याः=पञ्चमीं विभक्तिं विहाय ॥ उदा०—उपकुम्भं तिष्ठति । उपकुम्भं पश्य ॥

भाषार्थः—[अतः] अदन्त [अव्ययीभावात्] अव्ययीभाव समास से उत्तर सुप् का लुक् [न] नहीं होता है, अपितु उस सुप् को [अम्] अम् आदेश [तु] तो हो जाता है, [अपञ्चम्याः] पञ्चमी विभक्ति को छोड़कर ॥ अव्ययीभावश्च (१।१।४०) सूत्र से अव्ययीभाव समास अव्ययसंज्ञक होता है । सो पूर्वसूत्र से लुक् की प्राप्ति थी, यहाँ निषेध कर दिया है ॥ उपकुम्भं तिष्ठति (कुम्भ के समीप बैठता है) में 'अव्ययं विभक्ति० (२।१।६) से समास हुआ है । उपकुम्भ शब्द अदन्त अव्ययीभावसंज्ञक है, सो इसके सुप् को अम् आदेश हो गया है ॥

यहाँ से 'अव्ययीभावादतोऽम्' की अनुवृत्ति २।४।८४ तक जायेगी

तृतीयासप्तम्योर्बहुलम् ॥२।४।८४॥

तृतीयासप्तम्योः ६।२॥ बहुलम् १।१॥ स०—तृतीया च सप्तमी च तृतीया-सप्तम्यौ, तयोः······, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—अव्ययीभावादतोऽम् ॥ अर्थः—

अदन्तादव्ययीभावाद् उत्तरयोः तृतीयासप्तम्योर्विभक्त्योः स्थाने बहुलम् अम्भावो भवति ॥ उदा०—उपकुम्भेन कृतम्, उपकुम्भं कृतम् । सप्तमी—उपकुम्भे निधेहि, उपकुम्भं निधेहि ॥

भाषार्थः—अदन्त अव्ययीभाव से उत्तर [तृतीयासप्तम्योः] तृतीया और सप्तमी विभक्ति के स्थान में [बहुलम्] बहुल से अम् आदेश होता है ॥ पूर्व सूत्र से नित्य अम् आदेश पाता था, बहुल कर दिया ॥ जब अम् आदेश नहीं हुआ, तो विभक्ति का लुक् भी नहीं हुआ है ॥

लुटः प्रथमस्य डारौरसः ॥२।४।८५॥

लुटः ६।१॥ प्रथमस्य ६।१॥ डारौरसः १।३॥ स०—डाश्च रौश्च रश्च डारौरसः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अर्थः—लुडादेशस्य प्रथमपुरुषस्य स्थाने यथासङ्ख्यं डा रौ रस् इति त्रय आदेशा भवन्ति ॥ उदा०—कर्त्ता, कर्त्तारौ, कर्त्तारः ॥

भाषार्थः—[लुटः] लुडादेश जो (तिप् आदि), [प्रथमस्य] प्रथम पुरुष में उनको यथासङ्ख्य करके [डारौरसः] डा रौ रस् आदेश हो जाते हैं ॥ सिद्धि परि० १।१।६ के समान ही है । केवल यहाँ एकाच उप० (७।२।१०) से इट् का निषेध, और सार्वधातु० (७।३।८४) से 'कृ' को गुण, एवं उरण्रपरः (१।१।५०) से रपरत्व होगा ॥ कर्त्ता में अचो रहाभ्यां द्वे (८।४।४५) से 'त्' को द्वित्व भी हो जायेगा । तस् को रौ, झि को रस् आदेश होकर भी पूर्ववत् ही सिद्धि होगी ॥ आत्मनेपद तथा परस्मैपद दोनों के स्थान में ये डा रौ रस् आदेश हो जाते हैं ॥

॥ इति द्वितीयोऽध्यायः ॥